नई दिल्ली
रविवार, 05 अप्रैल, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-24 पृष्ठ- 12
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

असम और केरला चुनावों पर लगी हैं निगाहें, वोटर तौल रहे सबको, पलट सकती हैं सत्ताएं 4
नया ट्रांसजेंडर कानून तो हक़ छीनने जैसा 3

एडवर्टोरियल
असम 7-11

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

'रणनीतिक स्वायत्तता' या रणनीतिक अलगाव?

यह मोदी सरकार की विदेश नीति ही है कि आज भारत के पास कोई भी ऐसा विश्वसनीय मित्र देश नहीं जो हर हालत में उसका साथ दे

गुरदीप सिंह सप्पल

कूटनीतिक विफलता हमेशा ढोल नहीं पीटती। यह संयुक्त राष्ट्र में चुप्पी के रूप में, बातचीत की मेजों से अनुपस्थिति के रूप में, और उन रिश्तों के धीरे-धीरे ठंडे पड़ने के रूप में जाहिर होती है जिन्हें कभी हल्के में लिया गया होता है। एक समय ऐसा आता है, जब यह नुकसान इस कदर जमा हो चुका होता है कि साफ-साफ दिखाई देने लगता है। भारतीय कूटनीति के मामले में मार्च 2026 इसी कड़वी सच्चाई का एहसास कराने वाला साबित हुआ।

आजादी के बाद, भारत ने खुद को सबसे अहम 'स्विंग स्टेट्स' (निर्णायक भूमिका निभाने वाले देशों) में से एक के तौर पर, सभ्यताओं के बीच एक सेतु के तौर पर, और 'ग्लोबल साउथ' के स्वाभाविक नेता के तौर पर गढ़ा था। आज, उसकी सीमाओं पर उसका कोई दोस्त नहीं है; मौजूदा दौर के सबसे निर्णायक संघर्ष में वह महज एक दर्शक बनकर रह गया है; जिस महाशक्ति के साथ उसने अपने रिश्ते संवारे थे, उसी ने व्यापार के मामले में उसे दबाव में ले रखा है; और वह 'ब्रिक्स' गुट की अध्यक्षता कर रहा है, जिससे उसने साफ तौर पर अपनी राहें अलग कर ली हैं। नरेन्द्र मोदी सरकार का, विदेश नीति का मूलमंत्र 'रणनीतिक स्वायत्तता', अब 'रणनीतिक अलगाव' जैसा ज्यादा नजर आ रहा है।

पाकिस्तान का कूटनीतिक पुनरुत्थान

यह समझने के लिए कि भारत कितना पीछे खिसक गया है, उसके सबसे बड़े विरोधी के सफर पर गौर करें। अभी हाल ही में 2018 में, पाकिस्तान फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स की ग्रे लिस्ट में था। तालिबान, अल-कायदा, लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद से जुड़े आतंकवादी फ़ंडिंग नेटवर्क को पनाह देने के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सामने उसे सार्वजनिक रूप से शर्मिंदा होना पड़ा था। उसके अधिकारियों को एक अपमानजनक 34-सूत्रीय कार्य योजना से गुजरना पड़ा था। 2009 में, पाकिस्तान ने ऑर्गनाइजेशन ऑफ इस्लामिक कोऑपरेशन (ओआईसी) का बहिष्कार कर दिया था- जिसका वह एक संस्थापक सदस्य है, क्योंकि वह भारत के विदेश मंत्री को अबू धाबी में 57 देशों वाले उस संगठन को संबोधित करने से रोक पाने में असमर्थ था। और यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 2011 में ओसामा बिन लादेन पाकिस्तान की मिलिट्री अकादमी के एकदम करीब, एबटाबाद में रहता हुआ पाया गया था।

यह हाल के दिनों का पाकिस्तान था। लेकिन कुछ बदला। 2025 में पहलगाम हमले के बाद, पाकिस्तान को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की अध्यक्षता हासिल करने के लिए 182 वोट मिले। भारत ने इसके खिलाफ वोट दिया, लेकिन उसके साथ सिर्फ दो ही देश खड़े मिले। ऑपरेशन सिंदूर, जिसे मोदी सरकार ने पाकिस्तान के कूटनीतिक रूप से अलग-थलग पड़ने के एक मौके के तौर पर पेश करने की कोशिश की थी, के बाद उनके चीफ ऑफ डिफेंस फोर्सेज फील्ड मार्शल आसिम मुनीर को अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने व्हाइट हाउस में लंच पर आमंत्रित किया। और अब पाकिस्तान ही तुर्की, मिस्र और ओमान के साथ मिलकर अमेरिका-इजरायल-ईरान के बीच चल रहे युद्ध में शत्रुता को समाप्त करने की कोशिश में एक प्रमुख मध्यस्थ की भूमिका में है।

हर मेज से नदारद

यह युद्ध वैश्विक मामलों में भारत की स्व-घोषित केन्द्रीय स्थिति और उसके 'विश्वगुरु' होने के दावों के लिए सबसे क्रूर अग्निपरीक्षा बन गया है। ईरान के साथ भारत के हज़ारों साल पुराने सभ्यतागत रिश्ते हैं। उसने 'इंटरनेशनल नॉर्थ-साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर' के जरिये मध्य एशिया तक पहुंचने के लिए चाबहार बंदरगाह में बड़ा निवेश किया था। अमेरिकी पाबंदियां लगने से पहले, ईरान के कच्चे तेल का सबसे बड़ा खरीदार भारत ही था। और इस सबके बावजूद, जब अमेरिका और इसराइल ने ईरान के खिलाफ अपना सैन्य अभियान शुरू किया, तो भारत न तो चिंता जताने वाली आवाजों में शामिल था, न ही उन देशों में जिन्होंने 'सीजफायर' (युद्धविराम) शब्द बोलने की हिम्मत की, और अब न ही वह मध्यस्थों में शामिल है। सरकार ने इसे 'सोची-समझी चुप्पी' कहा, लेकिन दुनिया ने इसे एक ग्राहक देश की जी-हुज़ूरी के तौर पर देखा।

यह इस तरह की पहली अनुपस्थिति नहीं है। अगस्त 2021 में जब अमेरिकी सेना अफगानिस्तान से पीछे हटी, नई दिल्ली को उसके बाद हुई बातचीत से पूरी तरह बाहर रखा गया। भारत ने पिछले कुछ सालों में युद्ध से तबाह अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में 3 अरब डॉलर से ज्यादा का निवेश किया था और काबुल में अपनी मजबूत राजनयिक मौजूदगी बनाए रखी थी। दूसरी ओर, पाकिस्तान युद्ध के पूरे बीस सालों के दौरान तालिबान को पनाह देता रहा, पाला-पोसा और उनके साथ बातचीत के रास्ते खुले रखे। फिर भी, बातचीत की मेज पर रूस और चीन के साथ पाकिस्तान मौजूद था; भारत नहीं।

*

एक महाशक्ति बनने की चाह रखने वाले देश के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है कि किसी-न-किसी सिद्धांत के लिए खड़ा रहे। इसके साझेदार और विरोधी- दोनों ही इसकी स्थिति और प्रतिबद्धताओं को समझने में सक्षम होने चाहिए, ताकि वे उसी के अनुसार अपनी-अपनी स्थितियां तय कर सकें। पिछले लगभग पांच वर्षों के दौरान, भारत की विदेश नीति अस्पष्ट ही नहीं, एक पेंडुलम की तरह इधर-उधर डगमगाती भी रही है।

2020 की गलवान झड़प के बाद, मोदी सरकार ने चीनी ऐप्स और टेलीकॉम कंपनियों पर बैन लगा दिया था, लेकिन जब आर्थिक दबाव बढ़ा, तो उसने चुपचाप उनमें से कई बैन हटा लिए। उसने चीन के बढ़ते प्रभाव का मुकाबला करने के लिए एक रणनीतिक कदम के तौर पर 'क्वाड' समूह (जिसमें अमेरिका, भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं) को अपनाया, लेकिन जब इस समूह ने सुरक्षा के मामले में ज्यादा सख्त रुख अपनाया, तो सरकार ने अपनी असहजता जाहिर कर दी। यूक्रेन पर हमले के बाद, उसने रूसी कच्चे तेल पर अपनी निर्भरता और बढ़ा दी और पश्चिमी देशों के प्रतिबंधों की सरेआम अनदेखी की, लेकिन बाद में ट्रंप की 'टैरिफ ब्लैकमेलिंग' के आगे घुटने टेक दिए। अब उसने 'ब्रिक्स' समूह को भी निराश किया है, जिसकी अध्यक्षता वह खुद कर रहा है।

> रिश्तों को मजबूत गठबंधनों में बदल पाने में मिली नाकामी का भारत को सच में बड़ा खामियाजा भुगतना पड़ा है। 'रणनीतिक स्वायत्तता' का उसका दावा खोखला लगता है, और विदेश नीति के मामले में उसका अकेलापन एक कड़वी सच्चाई है

फोटो: गेटी इमेजेज

अमेरिका-इसराइल-ईरान युद्ध खत्म कराने के रास्ते तलाशने की कोशिश में सऊदी अरब, पाकिस्तान, तुर्की और मिस्र के विदेश मंत्री

इसका नतीजा यह हुआ कि आज हमारी विदेश नीति पर न तो कोई सहयोगी पूरी तरह भरोसा करता है और न ही कोई विरोधी उससे सचमुच खौफ खाता है। वॉशिंगटन बिना कोई मदद दिए, अपनी बात मनवा लेता है। मॉस्को तेल तो देता है, लेकिन सुरक्षा नहीं। बीजिंग सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार बना हुआ है और उसका व्यापार अधिशेष (ट्रेड सरप्लस) भी बहुत ज्यादा है, लेकिन भारत के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में वह सक्रिय रूप से पाकिस्तान के साथ खड़ा होता है। और सऊदी अरब, जिसे सरकार मुस्लिम जगत में मोदी की एक सफलता की कहानी के तौर पर पेश करती है, ने गाज़ा पर भारत की चुप्पी के बाद, सितंबर 2025 में इस्लामाबाद के साथ एक रक्षा संधि पर हस्ताक्षर कर दिए।

पड़ोसी दुश्मनापा

एक दशक से भी पहले औपचारिक रूप से सामने आई भारत की 'नेबरहुड फर्स्ट' (पड़ोसी पहले) नीति का मकसद भारत को इस क्षेत्र का एक अनिवार्य भागीदार बनाना था। लेकिन इसके बजाय, इसने एक ऐसा दक्षिण एशिया दिया है, जिसमें भारत एक ही समय पर सबसे बड़ी शक्ति भी है और सर्वाधिक अविश्वास का पात्र भी।

मालदीव ने मई 2024 में अपने 'इंडिया आउट' अभियान पर आधारित एक स्पष्ट चुनावी जनादेश के बाद भारतीय सैन्यकर्मियों को देश से निकाल दिया। भारत का सबसे भरोसेमंद साझेदार, भूटान अब खामोशी से अपनी नीतियों में बदलाव करना शुरू कर चुका है। उसने बीजिंग के साथ मिलकर चीनी नव वर्ष का उत्सव आयोजित किया, जिसमें उसके शाही परिवार के सदस्य भी शामिल हुए; बीजिंग को संकेत देते हुए तिब्बत को आधिकारिक तौर पर 'शिज़ांग' के नाम से संबोधित किया; और अब वह नई दिल्ली को दरकिनार करते हुए चीन के साथ सीधे सीमा वार्ता में जुटा है। उत्तरी भूटान की निर्जन जकारलुंग और मेनचुमा घाटियों में चीनी बस्तियां बस गई हैं, और भारत इस वास्तविकता को बदल पाने में असमर्थ रहा है। 'चिकन नेक' नाम से चर्चित सिलीगुड़ी कॉरिडोर भारत के पूर्वोत्तर राज्यों को देश के मुख्य भूभाग से जोड़ता है; यह कॉरिडोर ऊंची-ऊंची पहाड़ियों के सामने पूरी तरह से खुला हुआ है, जहां चीनी बुनियादी ढांचा लगातार आगे बढ़ता जा रहा है।

बांग्लादेश एक भरोसेमंद साझीदार से बदलकर अब एक खुला विरोधी बन चुका है। मुहम्मद यूनुस की अंतरिम सरकार ने तो अपने देश को चीन के लिए भारत के चारों ओर से जमीन से घिरे (लैंडलॉक्ड) पूर्वोत्तर राज्यों तक पहुंचने का एक प्रवेश द्वार बनाने का प्रस्ताव भी दे दिया था। भारत ने इस उकसावे का जवाब व्यापार मार्गों पर प्रतिबंध लगाकर दिया, जिससे अनुमानित तौर पर 770 मिलियन डॉलर के व्यापार पर असर पड़ेगा। इस कदम से भारतीय प्रभाव तो बहाल नहीं हुआ, असंतोष जरूर थोड़ा और बढ़ा दिया है।

नेपाल में, राजनैतिक हस्तियों की एक नई पीढ़ी ने सत्ता संभाली है, जिनके नई दिल्ली से कोई वंशानुगत रिश्ते नहीं हैं और न ही उस असंतुलन के प्रति वे उतने धैर्यवान हैं, जो हमेशा से इस रिश्ते की पहचान रही है।

म्यांमार में, भारत ने एक ऐसे सैनिक शासन पर दांव लगाया, जिसका अब देश के कुल भूभाग के मुश्किल से तीस प्रतिशत हिस्से पर ही नियंत्रण शेष है। सीमावर्ती क्षेत्रों पर तेजी से अपना वर्चस्व स्थापित कर रही प्रतिरोधक ताकतों के साथ भारत में किसी प्रकार का कोई रिश्ता नहीं बनाया है। चीन न सिर्फ वह खाली जगह भरने में सफल रहा है जिसे भारत ने छोड़ा था, बल्कि उसने सक्रिय रूप से उसका लाभ भी उठाया है।

विरासत की बर्बादी

मोदी सरकार 2023 में अपनी जी20 अध्यक्षता की सफलता पर इतराती है। इसमें कोई शक नहीं कि अफ्रीकी संघ को स्थायी सदस्य के तौर पर शामिल करना एक उल्लेखनीय पहल थी। मोदी सरकार के शुरुआती वर्षों में खाड़ी देशों के साथ हुई साझेदारियां वास्तविक, व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण और कूटनीतिक रूप से फलदायी थीं। यूरोपीय संघ और ब्रिटेन, न्यूजीलैंड और कुछ अन्य देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौते किए गए हैं।

लेकिन इनमें से ज्यादातर 'उपलब्धियां' या तो यूपीए काल से विरासत में मिली थीं या फिर पूर्व की पहलों को आगे बढ़ाकर हासिल की गई थीं। कुछ उपलब्धियां ढांचागत होने के बजाय ज्यादातर नाम-शोहरत से जुड़ी थीं; वे न तो टिकाऊ गठबंधनों में बदल पाईं, न ही पक्के वादों में और न ही संकट का सामना कर सकने वाले रिश्तों में।

भारत की जी20 'सफलता' मनमोहन के कार्यकाल के दौरान हुई वृद्धि का नतीजा है। एफटीए भी उसी रास्ते पर हैं जिस पर यूपीए-काल के एफटीए जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, आसियान और दस से ज्यादा दूसरे खास देशों के साथ चले थे। मोदी सरकार को पहला एफटीए साइन करने में आठ साल लग गए, और यूरोपीय संघ तथा ब्रिटेन के साथ डील के लिए ट्रंप के टैरिफ वाले नखरों की ज़रूरत पड़ी!

इन रिश्तों को मज़बूत गठबंधनों में बदलने में मिली नाकामी का भारत को सच में बड़ा ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ा है। 'रणनीतिक स्वायत्तता' का उसका दावा खोखला लगता है, और विदेश नीति के मामले में उसका अकेलापन एक कड़वी सच्चाई है। ■

गुरदीप सिंह सप्पल कांग्रेस कार्यसमिति के स्थायी आमंत्रित सदस्य हैं

विदेशी फंड पर मुसीबत

चैरिटी और धार्मिक समूहों को क्यों चिंतित कर रहा है नया एफसीआरए बिल?

हरजिंदर

यह तकरीबन एक सदी पुराना विवाद है। केरला के मलांकारा चर्च को लेकर सेंट थॉमस ईसाई समुदाय के दो पक्षों के बीच अधिकार कायम करने की लड़ाई अदालती हस्तक्षेप, खातों के फ्रीज होने तक पहुंच चुकी है। लेकिन अब विदेशी अंशदान संशोधन विधेयक, 2026 को लेकर चिंताएं दोनों ही पक्षों में समान रूप से दिख रही हैं।

कई वर्षों से मलांकारा चर्च के विभिन्न गुटों से जुड़े कई खाते चल रहे मुकदमों के कारण फ्रीज हैं। चर्चों और सेमिनरी से लेकर अस्पतालों और स्कूलों तक की संस्थाओं को वित्तीय अनिश्चितता के बीच काम करना पड़ा है। फिर भी, इन चुनौतियों के बावजूद दोनों पक्षों को एक बुनियादी भरोसा था कि समुदाय के प्रयासों और कभी-कभार मिलने वाले विदेशी फंडिंग से दशकों में बनाई गई उनकी संपत्तियां उनके स्वामित्व में ही रहेंगी, जिन पर केवल अदालती फैसलों का ही असर होगा। विदेशी अंशदान (विनियमन) संशोधन विधेयक यानी एफसीआरए, 2026 के आने से यह धारणा अब डगमगा गई है।

संसद में 25 मार्च 2026 को पेश किए गए इस विधेयक में विदेशी फंडिंग को नियंत्रित करने वाले ढांचे में बड़े बदलाव किए गए हैं। सबसे बड़ा विवाद उस प्रावधान पर है जो केन्द्र सरकार को यह अधिकार देता है कि अगर किसी संगठन का एफसीआरए पंजीकरण रद्द हो जाता है, समाप्त हो जाता है, स्वेच्छा से छोड़ दिया जाता है, या उसका रिन्यूअल नहीं हो पाता, तो वह उसकी संपत्तियों को अपने कब्जे में ले सकती है।

विदेशी अंशदान (विनियमन) संशोधन विधेयक रेगुलेटरी नियमों के पालन को एक 'डेमोक्लीज की तलवार' जैसा खतरा बना देता है, जहां प्रक्रिया में होने वाली देरी या चूक के कारण संपत्ति हमेशा के लिए जब्त की जा सकती है

संसद में एफसीआरए संशोधन विधेयक पेश करते केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री नित्यानंद राय। (नीचे) केरला का मलांकारा चर्च

जो संगठन पहले ही विवादों में उलझे हैं, उनके लिए यह एक गंभीर चिंता का कारण है। मुकदमों, प्रशासनिक अड़चनों या तकनीकी त्रुटियों के कारण होने वाली देरी संपत्तियों और संस्थानों पर सरकारी कब्जे का रास्ता खोल सकती है।

भारत में हजारों गैर-सरकारी संगठन, धार्मिक संस्थाएं, शैक्षणिक संस्थान और परोपकारी ट्रस्ट विदेशी फंडिंग पर निर्भर हैं। इनमें से कई को लगातार विदेशी धन नहीं मिलता, वे खास जरूरत पर, विशेष परियोजनाओं के लिए या सीमित अवधि के लिए ही विदेशी सहायता लेते हैं। ऐसे मामलों में, जब विदेशी धन सक्रिय रूप से प्राप्त नहीं हो रहा होता, तो संगठन अक्सर एफसीआरए रिन्यूअल को प्राथमिकता नहीं देते। प्रस्तावित संशोधनों के तहत यह एक समस्या कारण बन सकता है। यह प्रावधान उन संस्थाओं के कल्याणकारी काम को एक जोखिम में बदल सकता है, जहां प्रक्रियागत देरी या चूक, चाहे वे जानबूझकर हों या नहीं, संपत्तियों से हाथ धोने का कारण बन सकती हैं। चिंता का मुख्य कारण नौकरशाही के हाथों में विवेकाधीन शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीकरण है।

वरिष्ठ पत्रकार जॉन दयाल ने इस विधेयक को "कठोर और दमनकारी कदम" बताया है और इसकी तुलना अल्पसंख्यक समुदायों को प्रभावित करने वाले अन्य विवादास्पद कानूनों से की है। उनके अनुसार, एफसीआरए संशोधन का असर ईसाई संस्थानों पर सीधे पड़ सकता है, ठीक वैसे ही जैसे वक्फ कानूनों का मुस्लिम संगठनों की संपत्तियों पर पड़ सकता है।

हालांकि, चिंता केवल किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं है। स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, आपदा राहत और सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में काम करने वाले नागरिक समाज के विभिन्न संगठनों का मानना है कि यह विधेयक उनकी स्वायत्तता को कमजोर कर सकता है। इनमें से कई संस्थाओं ने स्थानीय योगदान और कभी-कभार मिलने वाले विदेशी धन के संयोजन से स्कूल, अस्पताल और सामुदायिक केन्द्र बनाए हैं। बाद में उन्हें इसकी जरूरत नहीं थी, इसलिए उन्होंने रिन्यूअल नहीं करवाया, अब इन सबके सरकार के कब्जे में जाने का खतरा खड़ा हो गया है।

कांग्रेस सांसद मनीष तिवारी ने इस मुद्दे को संवैधानिक नजरिये से देखते हैं। उनका कहना है कि यह विधेयक "गंभीर संवैधानिक खामियों" से ग्रस्त है।

शेष पेज 2 पर ▸

युद्ध से कामगारों और निर्यात को झटका

मार्च तक 2.6 लाख भारतीय खाड़ी के देशों से निकाले गए, जिनमें ज्यादातर मजदूर। साथ ही 3 लाख की नौकरी भी अटक गई

नंदिता हक्सर

सरकार ने पश्चिम एशिया के युद्ध क्षेत्र से भारतीयों को निकालना शुरू कर दिया है। विदेश मंत्रालय के मुताबिक अब तक 2.60 लाख भारतीय लौट चुके हैं। इनमें ज्यादातर मजदूर हैं। इस युद्ध में अब तक कम-से-कम दो भारतीय कामगारों की मौत हो चुकी है। भारतीय रिक्रूटमेंट एजेंसियों के मुताबिक, इस संघर्ष के कारण तीन लाख से ज्यादा भारतीयों को नौकरी पाने में देरी हो सकती है।

भारतीय कामगारों को ले आया गया है, अच्छी बात है, लेकिन इन्हें यहां नौकरी मिलने से रही और उनकी वापसी का मतलब है कि अब वे पैसे घर नहीं भेज पाएंगे जिससे उनके परिवारों का गुजारा होता था। पश्चिम एशिया से हर साल 12 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का रेमिटेंस प्रभावित होने का खतरा है; इसके अलावा इस संघर्ष का सबसे ज्यादा असर ज्वेलरी, कपड़ों और दवा निर्यात पर पड़ेगा।

वैश्विक युद्धों के कारण देश में 63 फीसद कंपनियों ने नई भर्तियां रोक दी हैं या कर्मचारियों की छंटनी की है। वहीं, 15 फीसद कंपनियां ठेके पर काम कराने लगी हैं जिससे मैन्युफैक्चरिंग, आईटी और सेवा क्षेत्रों में नौकरी की सुरक्षा और कर्मचारियों का मनोबल कमजोर हुआ है। अमेरिका-ईरान युद्ध ने हरियाणा के उद्योगों को, खास तौर पर कपड़ा और बासमती चावल के निर्यात को, प्रभावित किया है। इसकी मुख्य वजह एलपीजी की कमी, कच्चे माल की कीमतों में उछाल और सप्लाई चेन का टूटना है। पानीपत में एलपीजी की आपूर्ति में कटौती के कारण लगभग 400 डाइंग यूनिटें बंद हो गई हैं; 150 यूनिटों के लिए पीएनजी आपूर्ति 60 फीसद कम हो गई है जिससे कपड़ा और अन्य जुड़े क्षेत्रों में 60 फीसद उत्पादन ठप है।

एलपीजी की कमी के कारण रंगाई का काम बंद हो गया है, जो पानीपत के 60,000 करोड़ रुपये के हथकरघा/कपड़ा उद्योग (जिसमें 20,000 करोड़ रुपये का निर्यात शामिल है) की रीढ़ है; इसके चलते बरही और कुंडली में 125 से ज्यादा यूनिटें बंद करनी पड़ी हैं। अनुमान है कि हरियाणा में 300 कपड़ा फैक्ट्रियां बंद हो चुकी हैं। इन कस्बों में 35,000 से ज्यादा मजदूर बेरोजगार हो गए हैं, और कई प्रवासी मजदूर अपने राज्य लौटने लगे हैं। खेतीहर मजदूर भी इस युद्ध और जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हुए हैं, जिसने देश के कई हिस्सों में फसलों को तबाह कर दिया है।

सरकार का रवैया बड़े निगमों, व्यापार और उद्योग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहा है। वह भूल गई है कि उसका पहला कर्तव्य देश के नागरिकों, खास तौर पर मजदूरों और किसानों की रक्षा करना है। वह इसकी शुरुआत देश के सामने रिपोर्ट रखते हुए कर सकती है कि नई तकनीकों और युद्ध का असर मजदूर वर्ग पर किस तरह पड़ा है, और भारतीय नागरिकों के सबसे कमजोर तबकों की सुरक्षा के लिए सरकार क्या कदम उठाएगी।

भारत और दुनिया के अन्य हिस्सों में औद्योगिक और कृषि कामगार दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में लड़े जा रहे युद्धों से बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। जहां एक ओर इन युद्धों ने भारतीय व्यापार और उद्योग को ऊर्जा और कमोडिटी की बढ़ती कीमतों, सप्लाई चेन में रुकावटों, व्यापार और रेमिटेंस में झटकों, वित्तीय बाजार में उतार-चढ़ाव और रक्षा/रणनीतिक अनिश्चितताओं के जरिये प्रभावित किया है, वहीं दूसरी ओर, भारतीय अर्थव्यवस्था पर अमेरिका-ईरान युद्ध के असर के शुरुआती संकेतों में से एक यह है कि मार्च 2026 में निजी क्षेत्र ने तीन साल से भी ज्यादा समय में अपनी सबसे धीमी बढ़त दर्ज की।

पश्चिम एशिया के संघर्ष ने पहले भी कई बार कच्चे तेल और गैस की कीमतें बढ़ाई हैं, जिससे भारत का आयात बिल बढ़ा है, थोक और खुदरा महंगाई बढ़ी है, और एयरलाइंस, शिपिंग, पेट्रोकेमिकल्स और भारी विनिर्माण जैसे ज्यादा ऊर्जा खपत वाले उद्योगों के मुनाफे पर दबाव पड़ा है। ईंधन की बढ़ती लागत से चालू खाता घाटा भी बढ़ता है और रुपये पर दबाव पड़ता है, जिससे बदले में उद्योग के लिए आयातित मशीनरी और इनपुट की लागत बढ़ जाती है। युद्धों ने अप्रत्यक्ष रूप से महंगाई, नई भर्तियों पर रोक और कई क्षश्रेत्रों में सुस्ती के जरिये भारत के रोजगार बाजार

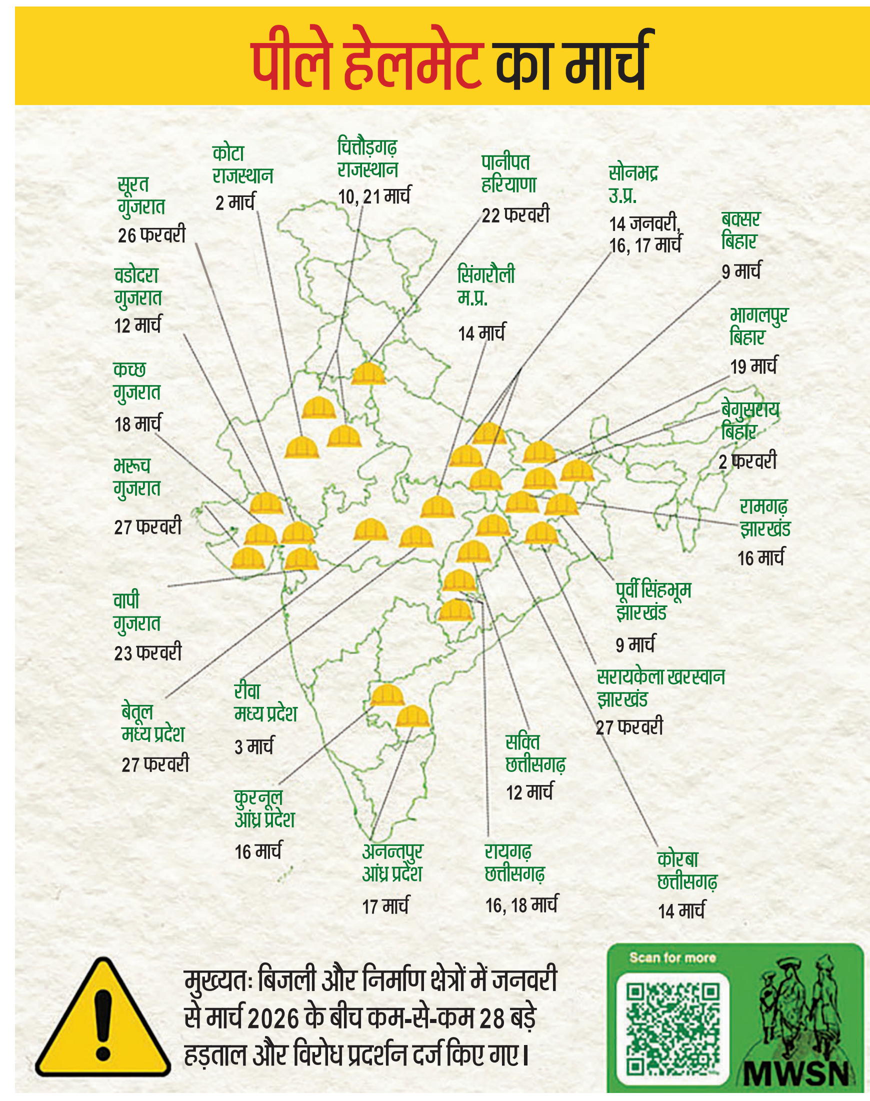

देश में 63 फीसद कंपनियों ने नई भर्तियां रोक दी हैं या कर्मचारियों की छंटनी की है। वहीं, 15 फीसद कंपनियां ठेके पर काम कराने लगी हैं जिससे मैन्युफैक्चरिंग, आईटी और सेवा क्षेत्रों में नौकरी की सुरक्षा और कर्मचारियों का मनोबल कमजोर हुआ है

और कामगारों पर दबाव डाला है, जबकि सीधे तौर पर संघर्ष वाले क्षेत्रों में लाखों प्रवासी कामगारों के लिए खतरा पैदा किया है।

*

माइग्रेंट वर्कर्स सॉलिडेरिटी नेटवर्क ने हाल ही में भारत में हुए बड़े पैमाने के विरोध प्रदर्शनों और हड़तालों की सूची तैयार की है। 2026 के पहले तीन महीनों में ही ऐसे 28 मामले दर्ज किए गए। उनकी रिपोर्ट में दिया गया नक्शा देशव्यापी विरोध प्रदर्शनों के विस्तार को दिखाता है। इसलिए, 1 अप्रैल 2026 को केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की देशव्यापी हड़ताल को, पूरे भारत में हाल ही में हुए उन विरोध प्रदर्शनों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जिनमें नए श्रम कानूनों को रद्द करने की मांग की गई थी।

भारत और दुनिया भर के मजदूरों ने जो बुनियादी अधिकार हासिल किए, वे थे स्थायी नौकरी का अधिकार, जीवन-यापन के लिए पर्याप्त मजदूरी और ऐसे कानून जो मजदूरों को अत्यधिक शोषण से बचा सकें। दुनिया भर के मजदूरों द्वारा हासिल किए गए शुरुआती अधिकारों में से एक था- 'आठ घंटे के काम का दिन'; हालांकि, नई तकनीकों-मुख्य रूप से रोबोटिक्स और एआई के विकास और वैश्विक बाजारों के आपसी जुड़ाव के कारण, कॉरपोरेट जगत ने सरकारों पर दबाव डाला है कि वे एक ऐसा श्रम बाजार बनाने में मदद करें, जहां वे मजदूरों को कानूनी तौर पर नौकरी पर रख सकें और जब चाहें, नौकरी से निकाल सकें।

भारत में भी ऐसा ही हुआ है। पिछले कुछ सालों से, निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में स्थायी कर्मचारियों की संख्या कम होती जा रही है, जबकि अस्थायी कर्मचारी बढ़ रहे हैं। इसमें ठेके पर काम करने वाले, प्रवासी, अस्थायी और कैजुअल कर्मचारी शामिल होते हैं।

*

2026 में अब तक हुई 28 बड़ी हड़तालें ठेका मजदूरों ने की हैं। उनकी मुख्य मांगें आठ घंटे की शिफ्ट और महीनों से बकाया मजदूरी का भुगतान हैं। ये प्रदर्शन और हड़तालें सरकारी क्षेत्र (पब्लिक सेक्टर) और टाटा, अंबानी और अडानी जैसे बड़े घरानों की निजी कंपनियों, दोनों में हुई हैं।

इनके बारे में आम लोगों को ज्यादा जानकारी नहीं है, क्योंकि मुख्यधारा के मीडिया, क्षेत्रीय मीडिया और यहां तक कि सोशल मीडिया पर भी इन्हें कवरेज नहीं मिला।

क्या पूरे भारत में फैक्ट्रियों के बंद होने की बढ़ती संख्या के लिए मजदूर जिम्मेदार हैं? कॉरपोरेट मामलों के मंत्रालय के संसदीय डेटा से पता चलता है कि 2020–21 और 2024–25 के बीच 2,04,000 से ज्यादा निजी कंपनियां बंद हो गईं। हालांकि, इस रुझान को सीधे तौर पर पुनर्गठन, दिवालियापन और बाजार दबाव से जोड़ा जा सकता है, न कि मजदूरों की अशांति से।

स्थायी नौकरियों की कमी हरियाणा के गुड़गांव, मानेसर और खरखौदा में स्थित मारुति-सुजुकी के प्लांट्स में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या से साफ तौर पर जाहिर होती है। मारुति सुजुकी अपने सभी प्लांट्स में लगभग 35,000-36,000 कर्मचारियों को रोजगार देती है, लेकिन इनमें से केवल 17-18 फीसद ही स्थायी कर्मचारी हैं-यानी लगभग 6,000-6,500 लोग, जिनकी औसत मासिक आय 1.3 लाख रुपये है और जो मुख्य रूप से सुपरवाइजरी भूमिका में काम करते हैं। बाकी (82-83 फीसद) कर्मचारियों में 40 फीसद ठेके पर, 21 फीसद अस्थायी कर्मचारी और 21 फीसद ट्रेनी/अपरेंटिस शामिल हैं, जिनकी कमाई 12 से 30 हजार रुपये के बीच है।

माइग्रेंट वर्कर्स सॉलिडेरिटी नेटवर्क ने कॉन्ट्रैक्ट कर्मचारियों की हड़तालों और विरोध प्रदर्शनों को दर्ज किया है। ये ठेका कर्मचारी दशकों से पक्की नौकरी के अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पहले, सरकार और अदालतों ने भी ठेका कर्मचारियों के इस अधिकार को सही ठहराया था कि अगर वे ऐसे कामों में लगे हैं जो हमेशा चलते रहते हैं, तो उनकी नौकरी पक्की की जानी चाहिए। लेकिन, नए लेबर कोड्स ने इस तरह की किसी भी कानूनी सुरक्षा को खत्म कर दिया है। ■

विदेशी फंड पर मुसीबत

▸▸ पेज एक का शेष

वह अनुच्छेद 300ए का हवाला देते हैं, जो संपत्ति के अधिकार की गारंटी देता है, अब यह प्रावधान इस अधिकार को कमजोर कर रहा है। उनके अनुसार, यह संशोधन वैध नियमावली और अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप के बीच की रेखा को धुंधला कर देता है। एक अन्य महत्वपूर्ण आलोचना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से जुड़ी है। विरोधियों का कहना है कि यह विधेयक अधिकारियों को "असीमित शक्तियां" प्रदान करता है, जिन पर मनमाने या चुनींदा ढंग से कार्रवाई के खिलाफ कुछ करने के अवसर नहीं हैं। माहौल में जिस तरह का ध्रुवीकरण है, उससे यह आशंका है कि इन शक्तियों का इस्तेमाल उन संगठनों को निशाना बनाने के लिए किया जा सकता है, जो सरकार की आलोचना करते हैं या उसकी सोच से मेल नहीं खाते।

इन आशंकाओं को संस्थागत स्तर पर भी आवाज मिली है। कैथोलिक बिशप्स कॉन्फ्रेंस ऑफ इंडिया (सीबीसीआई) ने इन प्रावधानों को "अलोकतांत्रिक" और "प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत" बताया है। उसका कहना है कि यह राज्य को अत्यधिक अधिकार देता है और इससे देशभर में परोपकारी और धार्मिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

राजनीतिक प्रतिक्रियाओं ने इस बहस को और तीखा कर दिया है। 30 मार्च को केरला में राहुल गांधी ने आरोप लगाया कि ये संशोधन विदेशी धन के प्रवाह को इस तरह से बदलने के लिए बनाए गए हैं, जिससे स्वतंत्र कल्याणकारी संगठनों को नुकसान हो और शासक दल से जुड़े संस्थानों को लाभ मिले। उन्होंने कहा कि यह विधेयक सामुदायिक संगठनों को "केन्द्र सरकार की दया पर" छोड़ देता है और कानून को नियंत्रण के औजार में बदल देता है।

केरला के मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन का कहना है कि इन संशोधनों ने अल्पसंख्यक समुदायों के बीच "चिंता पैदा कर दी है" जबकि मौजूदा कानूनी ढांचा पहले से ही विदेशी धन के दुरुपयोग से निपटने के लिए पर्याप्त शक्तियां प्रदान करता है। उनका रुख यह भी बताता है कि राज्य सरकारें इस विधेयक में अधिकारों के केन्द्रीकरण को लेकर चिंतित हैं।

ध्यान देने वाली बात यह है कि 2010 में मनमोहन सिंह सरकार के दौरान इस कानून में महत्वपूर्ण संशोधन किए गए थे, जिनका उद्देश्य पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाना था। विदेशी धन प्राप्त करने वाले संगठनों को हर तीन महीने में प्राप्त धन और उसके उपयोग की विस्तृत जानकारी पोर्टल पर सार्वजनिक रूप से उपलब्ध करानी होती थी।

मौजूदा सरकार ने 2022 में इसमें संशोधन करके कई तरह की ढील दे दी। आलोचकों का मानना है कि 2026 का विधेयक पारदर्शिता से नियंत्रण की ओर जाने का रास्ता तैयार करता है। यह कानून और स्वायत्तता के बीच संतुलन को बदल देता है।

जमीनी स्तर पर काम करने वाले संगठनों पर इसका असर तुरंत हो सकता है। जैसे एक परोपकारी ट्रस्ट ने दस साल पहले आंशिक विदेशी धन से एक ग्रामीण अस्पताल बनाया। अगर उस ट्रस्ट ने बाद में एफसीआरए पंजीकरण का नवीनीकरण नहीं कराया क्योंकि उसे अब विदेशी धन नहीं मिल रहा, तो नए प्रावधान उसकी संपत्तियों के सरकार के कब्जे में जाने का खतरा खड़ा कर सकते हैं। इसी तरह, मलांकारा चर्च जैसे कानूनी विवादों में फंसी संस्थाएं दोहरी असुरक्षा का सामना कर सकती हैं- पहले अदालती अनिश्चितता और फिर सरकारी कार्रवाई। धार्मिक समुदायों के भीतर भी असहजता बढ़ रही है। मलांकारा ऑर्थोडॉक्स सीरियन चर्च के कैथोलिकोस बेसिलियस मारथोमा मैथ्यूज तृतीय ने इस कानून की मूल अवधारणा पर सवाल उठाते हुए कहा है कि "चर्च के सदस्यों द्वारा किए गए चढ़ावे को भी संदेह की नजर से देखना अन्याय है।"

संसद में अभी इस पर बहस नहीं हुई, लेकिन एक बुनियादी सवाल अब भी अनुत्तरित है- विदेशी धन पर वैध निगरानी और संस्थागत स्वायत्तता की रक्षा के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाएगा? भारत भर के हजारों संगठनों के लिए यह उनके अस्तित्व का प्रश्न बन सकता है। ■

महिलाओं के बीच जमीन की तलाश

नंदलाल शर्मा

ममता गौतम घरेलू कामगार हैं, किसान हैं और आंदोलनकारी भी। दलित समाज से ताल्लुक रखने वाली ममता अपनी जमीन बचाने के लिए अडानी के खिलाफ चल रहे आंदोलन की अगुवाई कर रही हैं। जीवन-यापन के लिए वह दूसरों के घरों में घरेलू सहायक के तौर पर काम करती हैं। ममता उन 26 महिलाओं में हैं जिन्हें 22 मार्च को लखनऊ में समाजवादी पार्टी मुख्यालय में मूर्ति देवी-मालती देवी सम्मान से नवाजा गया। सम्मान पाने वालों की सूची में शामिल महिलाओं में पिछड़े-दलित और अल्पसंख्यक (पीडीए) समाज की प्रधानता नजर आती है।

सम्मान प्राप्त करने वाली सुनैना देवी मुसहर समाज से आती हैं। उनकी शादी बचपन में ही हो गई थी और वह पढ़ नहीं पाईं। इसके बावजूद उनके प्रयासों से मुसहर समाज के सैकड़ों बच्चे स्कूली शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। कार्यक्रम की संयोजक वंदना मिश्रा बताती हैं कि 'सुनैना देवी की राह आसान नहीं थी। उनके साथ मारपीट की गई, उन्हें हिंसा झेलनी पड़ी। फिर भी, वह पीछे नहीं हटीं।' ममता गौतम और सुनैना देवी-जैसी महिलाओं की मुख्यधारा में कोई चर्चा इसलिए नहीं होती क्योंकि उनकी नेटवर्किंग नहीं है।

दरअसल, 2024 लोकसभा चुनाव के नतीजों से अखिलेश यादव को पक्का हो गया है कि पीडीए (पिछड़ा, दलित और माइनॉरिटी) का उनका सामाजिक समीकरण यूपी विधानसभा चुनाव में भी सियासी हवा का रुख मोड़ सकता है। अखिलेश यही प्रयास कर रहे हैं।

29 मार्च को गौतमबुद्धनगर के दादरी में हुई समाजवादी समानता भाईचारा रैली से यूपी चुनाव अभियान की शुरुआत करते हुए भी अखिलेश ने कहा कि 'पीड़ा ही वह धागा है, जो पीडीए के लोगों को एक सूत्र में बांधता है। एक तरफ अहंकारी लोग हैं, जो उपेक्षा और उत्पीड़न करते हैं और दूसरी ओर उत्पीड़ित और उपेक्षित लोग हैं। ऐसे कमजोर और गरीब लोग हर जात-धर्म में होते हैं। जिसने अत्याचार, भेदभाव और उत्पीड़न की पीड़ा नहीं झेली है, वे हमदर्दी तो दिखा सकते हैं लेकिन उस दर्द को महसूस नहीं कर सकते, जो हमारे घर को गंगाजल से धुलवाने पर हमको हुआ था, या मंदिर धुलवाने पर जो हमने महसूस किया था।' ध्यान रहे कि 2017 विधानसभा चुनावों में सपा की हार के बाद मुख्यमंत्री आवास में योगी आदित्यनाथ के प्रवेश से पहले

अखिलेश यादव जानते हैं कि महिला वोट कितने निर्णायक हैं, इसीलिए उन्होंने महिला वर्ग के बीच इन्फ्लुएंसर/लीडर स्थापित करना शुरू किया है

उसे गंगाजल से धुलवाया गया था, जबकि 2024 के लोकसभा चुनाव के दौरान कन्नौज स्थित शिव मंदिर में सपा प्रमुख के दर्शन करने के बाद भाजपा कार्यकर्ताओं ने उसे गंगाजल से धुला था।

अखिलेश अपनी मुहिम में जरा भी असमंजस में नहीं दिखते। मूर्ति देवी-मालती देवी सम्मान की घोषणा करते समय भी स्पष्ट कर दिया गया कि मूर्ति देवी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिलेश यादव की दादी और मालती देवी मां थीं। इसी तरह, हाल में पार्टी ने अपनी दिवंगत सांसद फूलन देवी की बड़ी बहन रुक्मिणी निषाद को यूपी समाजवादी महिला सभा की कमान सौंपी है। इससे पहले 2024 लोकसभा चुनाव में पीडीए वाले सामाजिक-राजनीतिक समीकरण को उन्होंने आधार बनाया और 80 सीटों वाले उत्तर प्रदेश में पार्टी ने कांग्रेस के साथ गठबंधन में 43 सीटें जीत लीं। इसके पीछे राहुल गांधी के 'संविधान बचाओ अभियान' की भी बड़ी भूमिका थी। अखिलेश ने भी टिकट बंटवारे से लेकर सांगठनिक प्रतिनिधित्व के मामले में विभिन्न सामाजिक वर्गों को अपने मंतव्य के बारे में किसी तरह का शक सुबहा नहीं होने दिया।

दादरी की रैली में अखिलेश ने सत्ता में आने पर स्त्री सम्मान समृद्धि योजना के तौर पर गरीब महिलाओं को 40 हजार रुपये सालाना देने और समाजवादी महिला पेंशन योजना फिर से शुरू करने की बात कही। साथ ही 1090 हेल्पलाइन को और बेहतर बनाकर महिलाओं को सुरक्षा देने की बात की। महिला सम्मान समारोह में अखिलेश यादव के साथ काम कर चुके पूर्व मुख्य सचिव आलोक रंजन ने अपनी योजनाओं को गिनाया कि समाजवादी पार्टी ने किस तरह महिलाओं की सुरक्षा और उत्थान के लिए काम किया है। वरिष्ठ पत्रकार कुमार भावेश चंद्र कहते हैं कि नौ साल सत्ता में रहने के बाद भी मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ में आत्मविश्वास नहीं है कि वह सकारात्मक बातें करके वोट मांग लें- वह भाषण के पांचवें-सातवें मिनट में पिछली सरकारों के दौरान की कानून व्यवस्था की बात करने लगते हैं, जबकि अखिलेश यादव को लगता है कि पीडीए के नाम पर महिलाएं भी उनसे जुड़ी हैं, इसलिए वह आधी आबादी की बात करते हैं।

सपा ने 2024 के चुनाव में पीडीए वाले समीकरण को आधार बनाया और उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के साथ गठबंधन में 43 सीटें जीत लीं। इसके पीछे राहुल गांधी के 'संविधान बचाओ अभियान' की भी बड़ी भूमिका थी

अखिलेश जानते हैं कि यूपी विधानसभा की 403 सीटों के चुनाव में महिला वोट कितने निर्णायक हैं, इसलिए उन्होंने महिला वर्ग के बीच अपने इंन्फ्लुएंसर/लीडर स्थापित करने शुरू कर दिए हैं। मेरठ सपा के जिला उपाध्यक्ष संदीप यादव कहते हैं कि लीडर या इंन्फ्लुएंसर के तौर पर महिला मतदाताओं के बीच भेजे जाने वाले लोगों की संख्या दिनों दिन बढ़ाए जाने की योजना है। सम्मान समारोह में मौजूद उदय प्रताप सिंह ने अपने भाषण में याद भी किया कि मुलायम सिंह यादव अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत में एक दलित महिला की लड़ाई लड़ते हुए पहली बार जेल गए थे और मूर्ति देवी-मालती देवी पुरस्कार से सम्मानित महिलाओं की पृष्ठभूमि देखें तो वह ज्यादातर पिछड़े-दलित तबके से आती हैं।

अखिलेश की मुहिम पर इसलिए लोगों की निगाहें हैं कि ऐसा माना जाने लगा है कि चुनावों में महिलाएं लाभार्थी वर्ग के तौर पर जाति-धर्म से ऊपर उठकर भाजपा को वोट दे रही हैं। लोकनीति-सीएसडीएस पोस्ट पोल सर्वे 2022 के मुताबिक भी, महिला मतदाताओं के बीच भाजपा को सपा गठबंधन के मुकाबले 13 प्रतिशत की बड़ी बढ़त मिली। जाति और समुदाय के लिहाज़ से भाजपा के पक्ष में सबसे बड़ा लैंगिक अंतर कथित उच्च जातियों में देखने को मिला, जहां महिलाओं ने पुरुषों की तुलना में (90 प्रतिशत बनाम 83 प्रतिशत) भाजपा का अधिक समर्थन किया । ग्रामीण महिलाओं के बीच भी भाजपा को सपा के मुकाबले कहीं अधिक बढ़त मिली, और इस वर्ग के बीच दोनों पार्टियों को मिले वोट में 16 प्रतिशत अंक का अंतर रहा।

वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता और प्रोफेसर रूपरेखा वर्मा कहती हैं कि महिलाओं में यह बोध ज्यादा शिद्दत से होता है कि वह दलित, पिछड़ी या अमुक जाति की हैं। समाज में स्त्री के पति की जो स्थिति होती है, उसकी दोहरी मार स्त्री झेलती है। दलित वर्ग की महिलाओं में यह स्पष्ट दिखता है। वह बीते जमाने की डोला प्रथा का उदाहरण देती हैं। महिलाओं के मामले में प्रोफेसर वर्मा इस बात से सहमति जताती हैं कि पीड़ा एक ऐसी चीज है, जो उन्हें एकसूत्र में बांध सकती है, लेकिन यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस वर्ग में है? ■

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

संघ से ममता को नुकसान या फायदा?

वोटर लिस्ट में हेर-फेर, प्रशासनिक बदलाव और अर्द्धसैनिक बलों की तैनाती के बाद भी भाजपा की पहुंच से दूर रह सकता है बंगाल

सौरभ सेन

भाजपा के राज्यसभा सदस्य नागेंद्र राय को बंग विभूषण से सम्मानित करने वाले कार्यक्रम में मुख्यमंत्री ममता बनर्जी

जब जुलाई 2023 में भाजपा के केन्द्रीय नेतृत्व ने राज्यसभा के लिए नागेंद्र राय उर्फ अनंत महाराज को चुना, तो आरएसएस ने कड़ी नाराजगी जताई। आरएसएस के स्थानीय नेताओं का मानना था कि भाजपा को किसी ऐसे व्यक्ति का चुनाव करना चाहिए था जो उनकी वैचारिक जड़ों से ज्यादा जुड़ा हुआ हो। अनंत महाराज वह व्यक्ति था जिसने पश्चिम बंगाल से अलग राज्य (ग्रेटर कूच बिहार) बनाने के आंदोलन की अगुवाई की थी। लेकिन लोगों की भौंहें तन गईं जब महाराज निर्विरोध चुन लिए गए। उन्होंने चुने जाते ही ग्रेटर कूच बिहार की मांग छोड़ दी। यह बात तृणमूल कांग्रेस और आरएसएस, दोनों को ही भाने वाली थी।

फरवरी 2026 में जब राज्य सरकार ने अनंत महाराज को राज्य के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'बंग विभूषण' से सम्मानित किया, तो एक बार फिर लोगों की भौंहें तन गईं। राजनीतिक जानकारों ने इसे मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की एक ऐसी चाल के तौर पर देखा, जिसका मकसद विधानसभा चुनावों से पहले आरएसएस और भाजपा में फूट डालना था।

आरएसएस के साथ बनर्जी के रिश्ते सहूलियत वाले और अस्थिर रहे हैं। 2011 से पहले, जब ममता को वामपंथियों से मुकाबला करना था, तब वह आरएसएस स्वयंसेवकों को 'देशभक्त' बताती थीं। 2011 के बाद, जब वह राज्य सचिवालय में पूरी तरह स्थापित हो चुकी थीं, तो उन्होंने आरएसएस के 'अच्छे लोगों' की तारीफ की। अब, जब पश्चिम बंगाल एक और अहम चुनाव के लिए तैयार हो रहा है, तो ये रिश्ते पूरी तरह विरोधी हो गए हैं। तृणमूल कांग्रेस, आरएसएस को भाजपा के 'बंगाल-विरोधी एजेंडे', सांप्रदायिक राजनीति को भड़काने और एसआईआर के जरिये बड़े पैमाने पर मतदाताओं के नाम हटाने के पीछे की 'मुख्य ताकत' मान रही है।

आरएसएस ने भी अपनी भूमिका बदल ली है। अब वह पर्दे के पीछे से वैचारिक प्रभाव डालने वाली संस्था से हटकर, स्थानीय स्तर पर और खास चुनाव क्षेत्रों में जोरदार तरीके से काम करने वाली संस्था बन गई है। आरएसएस के वरिष्ठ नेता जिष्णु बसु ने 'नेशनल हेरल्ड' को बताया, 'यह चुनाव बंगाल के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। बंगाली हिन्दुओं के अस्तित्व को बचाने के लिए आरएसएस राजनीतिक और सामाजिक, हर तरह का प्रयास करेगा।'

भाजपा के लगभग 40 फीसद उम्मीदवारों ने राजनीतिक सफर आरएसएस के स्वयंसेवक या प्रचारक के तौर पर शुरू किया जिसके बाद उन्हें 'कुछ समय के लिए' भाजपा में भेजा गया। पार्टी ने खड़गपुर सदर जैसी सीटों से दिलीप घोष जैसे बड़े चेहरों को मैदान में उतारा है, जिनकी जड़ें आरएसएस में गहरी हैं। चुनाव के दिन स्वयंसेवक बूथों का प्रबंधन भी सक्रिय रूप से संभालेंगे, ताकि उन इलाकों में ज्यादा से ज्यादा लोग वोट डालने आएं जहां भाजपा मजबूत स्थिति में है।

एक माकपा कार्यकर्ता ने कहा, 'शहरी इलाकों के अमीर भाजपा समर्थकों को चुनाव के दिनों में पोलिंग बूथ पर ड्यूटी करने की मेहनत करना पसंद नहीं आता।' ग्रामीण बंगाल में, आरएसएस कार्यकर्ता इस तरह की किसी भी कमी को पूरा करेंगे। आरएसएस स्वयंसेवक चार भौगोलिक क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं, जहां उनका मानना है कि चुनाव का नतीजा तय होगा। उनकी प्राथमिकता मतुआ बहुल इलाका है, जिसमें उत्तरी 24 परगना और नदिया जिले की गाइघाटा, बनगांव उत्तर (एससी) और बागदा (एससी) जैसी सीटों को मिलाकर कुल 17–21 सीटें हैं।

एसआईआर के तहत 9.5 फीसद मतुआ लोगों को 'नॉन-मैप्ड' (अचिह्नित) श्रेणी में डाल दिया गया, क्योंकि वे अपने पुराने दस्तावेज पेश नहीं कर पाए थे। आरएसएस ने मतुआ लोगों के धार्मिक केन्द्र ठाकुर नगर के आस-पास दस्तावेजों से जुड़ी मदद के लिए कई हेल्प डेस्क खोले हैं।

मुर्शिदाबाद, मालदा और उत्तर दिनाजपुर- ये ऐसे जिले हैं जो बांग्लादेश सीमा पर पड़ते हैं और जहां मुसलमानों की आबादी काफी ज्यादा है। यहां आरएसएस आबादी में हो रहे बदलावों के बारे में वोटरों में जागरूकता पैदा करने पर जोर दे रहा है। चोपड़ा, गोलपोखर और इस्लामपुर ऐसी विधानसभा सीटें हैं जहां भाजपा अपनी रैलियों में घुसपैठियों के मुद्दे को जोर-शोर से उठा रही है, वहीं आरएसएस स्थानीय क्लबों और लाइब्रेरीज के साथ मिलकर सांस्कृतिक विरासत को बचाने के तरीकों पर चर्चा करने में जुटा है। आरएसएस उन सीटों पर खास तौर पर सक्रिय है, जहां बड़ी संख्या में वोटरों का मामला अभी 'अदालत में विचाराधीन' है।

> माकपा नेता रॉबिन देब कहते हैं, 'ममता आरएसएस की ही बनाई हुई हैं और वह उन्हें हटाना नहीं चाहेगा।' देब कहते हैं, 'ममता बनर्जी न्यू टाउन में जो 'दुर्गा आंगन' बनवा रही हैं, उसे मोहन भागवत का आशीर्वाद प्राप्त है। भागवत ने ही ममता को 'दुर्गा' कहा था'

आरएसएस के एक कार्यकर्ता ने 'नेशनल हेरल्ड' को बताया, 'सीमा पार बांग्लादेश के इलाकों में जमात-ए-इस्लामी को चुनाव में मिली सफलता हमारे लिए एक बड़ी चिंता का विषय है।' पश्चिम बंगाल के शहरी और औद्योगिक इलाकों- जैसे कोलकाता, हावड़ा और आसनसोल- में, जहां वोटर लिस्ट से सबसे ज्यादा नाम हटाए गए हैं, आरएसएस 'लापता वोटरों' की समस्या से निपटने के लिए 'सद्भाव बैठकें' आयोजित कर रहा है। जोड़ासांको, चौरंगी और कोलकाता पोर्ट- ये ऐसे मिले-जुले इलाके हैं जहां हिन्दी बोलने वालों की आबादी काफी ज्यादा है- यहां आरएसएस, स्थानीय मुद्दों से जुड़ी भावनाओं को अपने पक्ष में भुनाने की कोशिश कर रहा है।

झारग्राम, पुरुलिया और बांकुरा तक फैले जंगलमहल आदिवासी क्षेत्र में, 'वनवासी कल्याण आश्रम' अपनी 'पंच परिवर्तन पहल' के जरिये इस अभियान को आगे बढ़ा रहा है। इस पहल में सामाजिक सद्भाव, पारिवारिक मूल्यों, पर्यावरण, आत्मनिर्भरता और नागरिक कर्तव्यों पर जोर दिया गया है। उम्मीद है कि आदिवासी गांवों में 'स्वबोध' की भावना जगाने से, 'युवाश्री' और 'लक्ष्मी भंडार' जैसी सरकारी कल्याणकारी योजनाओं पर उनकी निर्भरता कम होगी।

आरएसएस की गतिविधियां भाजपा या तृणमूल कांग्रेस के लिए फायदेमंद साबित होंगी या नुकसानदेह, यह ऐसा सवाल है जिस पर जोरदार बहस चल रही है।

माकपा के वरिष्ठ नेता और केन्द्रीय समिति के पूर्व सदस्य रॉबिन देब कहते हैं, 'ममता बनर्जी आरएसएस की ही बनाई हुई हैं और आरएसएस उन्हें बंगाल से हटाना नहीं चाहेगा।' देब के मुताबिक, 1990 के दशक के आखिर में दो क्षेत्रीय पार्टियों के गठन के पीछे आरएसएस का ही हाथ था- 1996 में तमिलनाडु में जी.के. मूपनार के नेतृत्व में 'तमिल मनीला कांग्रेस' और 1998 में पश्चिम बंगाल में 'तृणमूल कांग्रेस'। इसका मकसद दोनों राज्यों से कांग्रेस को खत्म करना था। देब कहते हैं, 'ममता बनर्जी न्यू टाउन में जो 'दुर्गा आंगन' बनवा रही हैं, उसे मोहन भागवत का आशीर्वाद प्राप्त है। भागवत ने ही ममता बनर्जी को 'दुर्गा' कहा था।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि तृणमूल के शासनकाल में ही आरएसएस ने पश्चिम बंगाल में संगठन का विस्तार किया। जब 2011 में ममता सत्ता में आईं, तब आरएसएस की लगभग 830 शाखाएं थीं। तब से यह संख्या पांच गुना बढ़ गई है। मध्य बंगाल में, 2023 और 2025 के बीच इसने 500 नई शाखाएं जोड़ीं, जिससे इनकी संख्या 1,320 से बढ़कर 1,823 हो गई। पूरे ग्रामीण बंगाल में, विशेष रूप से सीमावर्ती जिलों में, दैनिक शाखाओं, साप्ताहिक मिलनों और मासिक मंडलियों की संख्या बढ़ाने का भी सुनियोजित प्रयास किया गया। रिपोर्ट बताती है कि ऐसी 4,540 इकाइयां कार्यरत हैं, और इस महीने के अंत तक 2026 के विधानसभा चुनावों से पहले 8,000 इकाइयों का लक्ष्य रखा गया है।

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान और उसकी राज्य-स्तरीय शाखाओं (सरस्वती शिशु मंदिर और सरस्वती विद्या मंदिर) के तहत चल रहे संघ से जुड़े स्कूल बंगाल में आरएसएस और तृणमूल कांग्रेस के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का उदाहरण हैं। ये स्कूल, जो वामपंथी-धर्मनिरपेक्ष राज्य बोर्ड और कुलीन मिशनरी स्कूलों, दोनों को चुनौती देते हैं, 2011 के बाद तेजी से बढ़े। वर्तमान में, विद्या भारती से जुड़े 1,500 से ज्यादा स्कूल हैं, जिनमें 3.5 लाख छात्र पढ़ते हैं।

इस बीच, भाजपा को अपने अंदरूनी गुटों के बीच तालमेल बैठाने में मुश्किल हो रही है। जहां एक गुट-जिसका केन्द्र दिलीप घोष हैं- को आरएसएस का आशीर्वाद प्राप्त है, वहीं दूसरे गुट- जिसकी अगुवाई सुवेंदु अधिकारी कर रहे हैं, उसे अमित शाह से ताकत मिल रही है। टिकट बंटवारे को लेकर दोनों गुटों के बीच चल रही खींचतान खुलकर सामने आ चुकी है। यदि आरएसएस ममता बनर्जी के प्रति नरम रुख अपनाने का फैसला करता है- उदाहरण के लिए, 'बूथों पर मोर्चा न संभालने' का निर्णय लेकर- तो हो सकता है कि बंगाल भाजपा की पहुंच से बाहर ही रह जाए; भले वोटर लिस्ट में हेरफेर किया गया हो, अमित शाह ने राज्यपाल से लेकर जिलाधिकारी तक पूरे राज्य प्रशासन को बदल दिया हो, और 50,000 अर्धसैनिक बलों की तैनाती की गई हो। ■

सौरभ सेन कोलकाता में रह रहे स्वतंत्र लेखक और टिप्पणीकार हैं

फोटो: विपिन

ट्रांसजेंडर संशोधन विधेयक का विरोध करते एलजीबीटी समुदाय के लोग

यह तो बमुश्किल हासिल हक़ को छीनना है

नया ट्रांसजेंडर कानून प्रतिगामी है। संवैधानिक गारंटियों का भी उल्लंघन करता है

चित्तजीत मित्रा

13 मार्च 2026 को, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री वीरेंद्र कुमार ने लोकसभा में 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) संशोधन विधेयक, 2026' पेश किया। मैंने जब सुना, तो यह मेरी नासमझी थी कि मुझे लगा- आखिरकार वे वह बदलाव लाने जा रहे हैं, जो ट्रांसजेंडर समुदाय दशकों से मांग रहा है। उदाहरण के लिए, क्षैतिज आरक्षण (horizontal reservations) के प्रावधान, या 2019 के अधिनियम में एक साथ समूहीकृत की गई विभिन्न प्रकार की हिंसा के लिए समान दंड सुनिश्चित करना। लेकिन असलियत कड़वी थी। पता चला कि यह नया विधेयक तो समुदाय के अधिकारों का विस्तार करने के बजाय, वे लगभग सारे अधिकार वापस ले लेता है जो उन्होंने दशकों की लड़ाई के बाद हासिल किए हैं।

विपक्ष की इस मांग के बावजूद कि बिल व्यापक विचार-विमर्श के लिए 'सिलेक्ट कमेटी' को भेजा जाना चाहिए, और वकीलों एवं कार्यकर्ताओं की इस अपील के बावजूद कि राष्ट्रपति इस पर अपनी सहमति न दें, इसके प्रतिगामी प्रावधान अब एक नया कानून बन चुके हैं।

ये बदलाव प्रतिगामी क्यों हैं? यह संशोधन किस प्रकार मौलिक अधिकारों को कमजोर करते हैं या उनका उल्लंघन करते हैं, और अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता), अनुच्छेद 15 (भेदभाव-रहित व्यवहार), अनुच्छेद 19 (अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) तथा अनुच्छेद 21 (जीवन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और शारीरिक अखंडता की सुरक्षा) के तहत प्राप्त सुरक्षा को किस प्रकार कमजोर करते हैं?

नया कानून 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति' की परिभाषा को सीमित करता है। यह स्व-पहचान को अमान्य ठहराता है और मेडिकल बोर्ड तथा जिला मजिस्ट्रेटों को 'प्रमाणित' करने का अधिकार देता है। ऐसा करके, यह सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक 'नालसा' फैसले (2014 का) के खिलाफ जाता है, जिसने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के संवैधानिक अधिकारों को मान्यता दी थी और लैंगिक पहचान के लिए स्व-पहचान का सिद्धांत स्थापित किया था।

नए कानून में लागू की गई श्रेणीबद्ध दंड प्रणाली, जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को ट्रांसजेंडर के रूप में प्रस्तुत करने के लिए दबाव/धोखाधड़ी/प्रलोभन को अपराध घोषित करना है, में व्यापक भाषा का प्रयोग किया गया है, जहां लिंग-पुष्टि संबंधी देखभाल को भी दबाव के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। यह समुदाय की वास्तविकताओं को अनदेखा करता है और संभावित रूप से उनकी सहायता प्रणालियों का अपराधीकरण करता है।

*

मैं उत्तर प्रदेश में ट्रांसजेंडर समुदाय के बारे में तरह-तरह की अफवाहें सुनते बड़ा हुआः कि उनके जननांगों की बनावट अजीब होती है (जिन्हें ठीक से पहचाना नहीं जा सकता), कि वे चोरी और बच्चों के अपहरण में शामिल होते हैं, कि वे लोगों को खुद को नपुंसक बनाने के लिए मजबूर करते हैं... और भी बहुत कुछ। धारणा का ऐसा विकृतिकरण, जिसने इस समुदाय को लंबे समय से हाशिये पर धकेल रखा है, अब कानूनी रूप में फिर सामने आ गया है।

यह बिल ट्रांसजेंडर व्यक्ति की परिभाषा को महज सिर्फ तीन संकीर्ण श्रेणियों तक सीमित कर देता हैः पुरुष, महिला, ट्रांसजेंडर। इंटरसेक्स व्यक्तियों को ट्रांसजेंडर श्रेणी में शामिल करके- भले ही इंटरसेक्स विविधताएं जैविक हों और लैंगिक पहचान से अलग हों- और सिर्फ कुछ खास सामाजिक-सांस्कृतिक समूहों (जैसे, किन्नर, हिजड़ा, अरवानी, जोगता, नपुंसक) को ही सूची में शामिल करके, यह उन ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को साफ तौर पर उनके अधिकारों से वंचित करता है जो शायद इन सामाजिक-सांस्कृतिक समूहों में से किसी का भी हिस्सा न हों। ऐसे में नॉन-बाइनरी और लैंगिक रूप से अलग-अलग लोगों का क्या होगा? मणिपुर के 'नुपी मानबी' जैसे अन्य ट्रांस समूहों का क्या होगा?

यह 'ट्रांसजेंडर होने' से ऐसे जैविक मार्कर जोड़ता है जो लैंगिक पहचान की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत परिभाषाओं के विपरीत है। जैसा कि यूरोपियन इंस्टीट्यूट फॉर जेंडर इक्वलिटी कहता है, लैंगिक पहचान 'हर व्यक्ति का लिंग के प्रति आंतरिक और व्यक्तिगत अनुभव है, जो जन्म के समय निर्धारित लिंग से मेल खा भी सकता है और नहीं भी; इसमें व्यक्तिगत अनुभूति (जिसमें, यदि स्वतंत्र रूप से चुना जाए, तो चिकित्सा, शल्य चिकित्सा या अन्य माध्यमों से शारीरिक बनावट या कार्य में बदलाव शामिल हो सकता है) और लिंग की अन्य अभिव्यक्तियां, जैसे कि पहनावा, बोली और हाव-भाव शामिल हैं।'

यह ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को प्रभावी ढंग से प्रमाणित करने के लिए जिला-स्तरीय मेडिकल बोर्ड के गठन की फिर से शुरुआत करता है। इस विवादास्पद प्रावधान का एक इतिहास हैः इसे शुरू में 2016 में प्रस्तावित किया गया था, जिसे कार्यकर्ताओं ने 'मेडिकल और नौकरशाही की रोक-टोक' और 'नालसा' फैसले (2014) का उल्लंघन बताया था, जिसके बाद 2019 के अधिनियम में इसे वापस ले लिया गया था।

> यह विधेयक उन सभी सहायता प्रणालियों पर हमला करता है, जिन पर यह समुदाय अब तक निर्भर रहता आया है – मसलन एनजीओ, सीबीओ, यानी समुदाय-आधारित संगठन और यहां तक कि पारंपरिक समूह भी

2019 का अधिनियम भी आदर्श से कोसों दूर था। समुदाय के गरिमा के अधिकार की इसमें जैसी उपेक्षा की गई थी, वह इस बात से साफ जाहिर होती है कि बलात्कार और शारीरिक शोषण जैसे हिंसक अपराधों को, समुदाय के विरुद्ध किए गए कम गंभीर अपराधों (जैसे सार्वजनिक स्थानों के उपयोग में बाधा डालना) के साथ 'व्यापक प्रावधान' के तहत मिला दिया गया था- और इन सभी के लिए एक जैसी ही हल्की सजा का प्रावधान रखा गया था। तो क्या सचमुच यह 'अधिकारों के संरक्षण' के बारे में है- जैसा कि इस कानून की शब्दावली आपको भरोसा दिलाना चाहती है।

जब नेशनल काउंसिल फॉर ट्रांस पर्सन्स (एनसीटीपी) के ट्रांसजेंडर सदस्यों को सामाजिक न्याय मंत्री वीरेंद्र कुमार के साथ एक जरूरी मीटिंग के लिए देश के अलग-अलग हिस्सों से बुलाया गया, तो उन्होंने बातचीत में खुद आने के बजाय नौकरशाहों को भेज दिया। 25 मार्च को एनसीटीपी से इस्तीफा देते हुए (जब राज्यसभा ने बिल पास किया था), काउंसिल के सदस्यों कल्कि सुब्रमण्यम और रितुपर्णा नियोग ने बताया कि चर्चाओं के दौरान क्या हुआ था। उदाहरण के लिए, जब उनसे बलात्कार से जुड़े असमान कानूनों के बारे में पूछा गया, तो अधिकारियों ने ट्रांस महिलाओं और सिस जेंडर महिलाओं के बीच "जैविक अंतर' का हवाला दिया। यह नए बिल के पीछे की भेदभावपूर्ण मानसिकता उजागर करता है, जो कि 'बायो-एसेंशियलिज्म' (जैव-सारवाद) पर केन्द्रित है- एक ऐसी मान्यता जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के अस्तित्व का मूल सार जैविक कारकों में निहित है, न कि कानून के समक्ष समानता के बुनियादी मानवाधिकार में।

एक और खतरनाक संशोधन किसी भी व्यक्ति या बच्चे को 'बाहरी तौर पर ट्रांसजेंडर पहचान अपनाने के लिए मजबूर करने' की कोशिश पर कड़ी सजा (10 साल से लेकर आजीवन कारावास तक) का प्रावधान करता है। ऊपर से देखने पर, यह एक गैर-नुकसानदेह ही नहीं, हित में बनाया गया नियम भी लग सकता है, लेकिन इन धाराओं में इस्तेमाल की गई उलझी भाषा के कारण, जमीनी स्तर पर इसका असर बेहद डरावना होने जा रहा। कई मामलों में ट्रांस लोगों को अपने जन्म के परिवार से हिंसा का सामना करना पड़ता है और उन्हें घर पर अपनी असली पहचान छिपाने को मजबूर होना पड़ता है। अगर घर से भागने और ऊपर बताए गए किसी भी संस्थान में पनाह लेने का चुनाव करते हैं, तो इनके परिवार आसानी से उन लोगों के खिलाफ 'अपहरण या बहकाने' का केस दर्ज कर सकते हैं, जिन्होंने उन्हें पनाह दी हो। यह पुरानी सोच कि माता-पिता या जन्मना परिवार बच्चे को नुकसान नहीं पहुंचा सकता, बार-बार गलत साबित हुई है; फिर भी हम आंख मूंदकर ट्रांस लोगों के जन्मसिद्ध अधिकार उनके परिवार के हवाले कर रहे हैं।

अंततः, भारतीय 'क्वीयर समुदाय' (लैंगिक रूप से हाशिये पर पड़े समुदाय) को यह समझना होगा कि समाज के किसी भी वर्ग को अधिकारों से वंचित करने पर आधारित राजनीति, एक दिन उन्हें भी परेशान करने को वापस आएगी। भारत के एलजीबीटीक्यू+ समुदाय का एक छोटा-सा हिस्सा बहुसंख्यकवादी ताकतों से मान्यता पाने की जीतोड़ कोशिश करता रहा है; इस नए कानून से उन्हें यह समझ आ जाना चाहिए कि वे असल में कहां खड़े हैं। आगामी जनगणना में हमें और भी ज्यादा हाशिये पर धकेलने और हमारी गिनती कम करने की दुर्भावनापूर्ण कोशिशों को बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। अब समय आ गया है कि हम सब मिलकर एक स्वर में अपनी बात उठाएं। ■

चित्तजित मित्रा इलाहाबाद निवासी लेखक और अनुवादक हैं

असम चुनाव में जेन जेड बन सकते हैं किंगमेकर

डिजिटल युग के साथ कदमताल करने वाली युवा पीढ़ी राजनीतिक परिदृश्य को नया आकार देने की ओर

सौरभ सेन

क्या 'जेन जेड' असम में भी वही कर सकती है जो हमने बांग्लादेश और नेपाल में देखा? जैसे-जैसे 9 अप्रैल को होने वाले एक ही चरण में होने वाले विधानसभा चुनाव के लिए राज्य में माहौल गरमा रहा है, सबका ध्यान उस वर्ग की ओर जा रहा है जो अब सिर्फ वोट देने वाला समूह नहीं, बल्कि निर्णायक राजनीतिक ताकत बन चुका हैः युवा। 18-29 साल की उम्र के राज्य में 72.83 लाख वोटर हैं जो कुल 2.5 करोड़ वोटरों का करीब 30 फीसद हैं और यही वर्ग इस अहम मुकाबले में 'किंगमेकर' साबित होने जा रहा है।

भारत निर्वाचन आयोग के मुताबिक, 2026 की मतदाता सूची में युवाओं की संख्या में काफी बढ़ोतरी देखी गई है, जिसमें 6.28 लाख पहली बार वोट देने वाले मतदाता हैं। जेन जेड मतदाताओं का यह समूह विशेष रूप से एकजुट है, क्योंकि पिछली पीढ़ियों की तुलना में ये लोग डिजिटल रूप से ज्यादा जुड़े हुए हैं और पारंपरिक राजनीतिक पार्टियों के प्रति इनकी निष्ठा कम है। उदाहरण के लिए, गुवाहाटी सेंट्रल जैसी सीटों पर युवा उम्मीदवारों की मौजूदगी- जैसे 27 साल की कुंकी चौधरी (असम जातीय पार्टी) का भाजपा के दिग्गज नेता विजय कुमार गुप्ता को चुनौती देना- ऐसे बदलाव की ओर इशारा करती है, जहां युवा अब सिर्फ वोट ही नहीं डालना चाहते, बल्कि नेतृत्व की भी चाह रखते हैं।

सीएए-विरोधी आंदोलन से जन्मी एजेपी नेता कुंकी असमिया पहचान और भारत के सभी कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त नागरिकों के हितों की रक्षा के लिए 'असम समझौते' को लागू करने की पुरजोर वकालत करती हैं। यह बात उन्हें भाजपा, और खास तौर पर मुख्यमंत्री हिमंत बिस्वा सरमा के,उस तीखे अभियान के खिलाफ खड़ा करती है, जो 'मिया' (बांग्ला बोलने वाले मुसलमानों) के उत्पीड़न पर आधारित है। वह कहती हैं, 'असम के मौजूदा हालात को देखते हुए, हम सभी को समावेशी क्षेत्रवाद पर आधारित समग्र दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है।'

25 साल के लोबो नारजरी, कोकराझार से निर्दलीय उम्मीदवार हैं और सबसे कम उम्र के उम्मीदवारों में हैं। युवाओं से मिले जबरदस्त समर्थन का जिक्र करते हुए नारजरी बताते हैं कि कैसे अलग-अलग पार्टियों के 'पावर ब्रोकर' सबसे ज्यादा बोली लगाने वाले को ही टिकट दिलवाते हैं। उनका मानना है कि अब समय आ गया है कि भ्रष्टाचार और सांप्रदायिक नफरत आधारित मौजूदा सोच से आगे बढ़ा जाए। नारजरी ने 'नेशनल हेरल्ड' से बातचीत में कहा, 'मेरा मानना है कि सिर्फ शॉपिंग मॉल और इमारतें बनाने का मतलब विकास नहीं। मेरे लिए विकास तब होता है, जब लोग अपने परिवार के साथ शांति से रहें और अपनी मर्जी का काम करें।' उन्होंने कहा, 'हिंसा और पहचान की राजनीति तब होती है, जब भ्रष्ट गिरोह और ड्रग माफिया पूरे सिस्टम पर कब्जा कर लेते हैं।'

सपाली मारक (31) बाओखुंगरी से कांग्रेस उम्मीदवार हैं। उनके सामने एक बहुत बड़ा काम है- बाओखुंगरी के जटिल सामुदायिक समीकरण को साधना, जहां बोडो, गारो और संथाल समुदाय अलग-अलग दिशाओं में खिंच रहे हैं। मारक ने नेशनल हेरल्ड को बताया, 'शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार मेरी प्राथमिकताएं होंगी।'

दूसरी ओर, भाजपा ने अपने युवा कैडर के नेतृत्व को मुख्यधारा में लाने का फैसला किया है। इसका एक उदाहरण दिप्लू रंजन सरमा हैं, जो न्यू गुवाहाटी निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे हैं। सरमा भाजयुमो के प्रदेश अध्यक्ष रह चुके हैं। 2024 के उपचुनाव के बाद वह सुर्खियों में आए थे, जब उन्होंने कांग्रेस के गढ़ माने जाने वाले समगुरी से जीत हासिल की थी। हाल ही में एक दौरे के दौरान, सरमा ने बताया कि केंद्र और राज्य सरकारों तथा नगर निगमों के मिले-जुले प्रयासों ने मतदाताओं के बीच एक 'सकारात्मक माहौल' बनाया है। उन्होंने मीडिया से कहा, 'सरकार द्वारा किए गए कामों ने मेरा काम आसान कर दिया है। मुझे बस लोगों तक पहुंचना और उनका आशीर्वाद लेना है।'

> सोशल मीडिया पर राजनीतिक बातों को सुनने-समझने वालों में ज्यादातर युवा वोटर हैं। इसलिए असम का 2026 का चुनाव प्रचार जितना सड़कों पर लड़ा जा रहा है, उतना ही स्मार्टफोन पर भी। पार्टियों ने भी डिजिटल प्रचार की योजना पर संसाधन लगाए हैं

क्या असम की राजनीति एक ऐसी पीढ़ीगत बदलाव की गिरफ्त में है, जिसके लिए बातचीत के नए मुद्दों और काम करने के नए तरीकों की जरूरत होगी? नारजरी और चौधरी जैसे उम्मीदवारों का चुनावी मैदान में उतरना इस बात का शुरुआती संकेत है कि असम का राजनीतिक परिदृश्य अब 'जेन जेड' (नई पीढ़ी) से ज्यादा प्रभावित हो रहा है; यहां पारंपरिक पहचान की राजनीति के साथ-साथ डिजिटल प्रचार और स्थानीय विकास के मुद्दे भी अब केन्द्र-बिंदु बनते जा रहे हैं। सरकार के 1.65 लाख नौकरियां देने के दावे के बावजूद, शहरी और ग्रामीण युवा लगातार निजी क्षेत्र में अवसरों की कमी और बेहतर व्यावसायिक प्रशिक्षण की जरूरत को लेकर आवाज उठा रहे हैं। कॉटन यूनिवर्सिटी जैसे संस्थानों के छात्रों ने लोकलुभावन नारों के बजाय फीस में कमी, बेहतर शैक्षणिक सुविधाओं और आधुनिक कार्य-संस्कृति की मांग की है।

सोशल मीडिया पर राजनीतिक बातों को सुनने-समझने वालों में ज्यादातर युवा वोटर हैं, इसलिए असम का 2026 का चुनाव प्रचार सड़कों पर जितना लड़ा जा रहा है, उतना ही स्मार्टफोन पर भी। पार्टियों ने डिजिटल प्रचार की योजना बनाने के लिए अपने संसाधन लगाए हैं और युवाओं से जुड़े मुद्दों, जैसे हाई-स्पीड इंटरनेट की उपलब्धता, स्टार्ट-अप के लिए ग्रांट और पारदर्शी शासन को भी अपने एजेंडे में शामिल किया है। एक तरफ जहां हिमंत सरमा जैसे पुराने नेता इस उम्मीद में कि लोग भावनाओं में बहकर वोट देंगे, अपनी बेहद भड़काऊ और सांप्रदायिक बयानबाजी से जहर उगलते रहते हैं वहीं, नई पीढ़ी के नेता, खासकर विपक्षी 'असम सोनमिलित मोर्चा' (एएसएम) के नेता, रोजगार और कौशल की कमी, शिक्षा और स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे जैसे ज्यादा जरूरी मुद्दों पर बात कर रहे हैं। हालांकि एनआरसी, सीएए और घुसपैठ जैसे पुराने मुद्दे अब भी मायने रखते हैं, लेकिन आज की युवा पीढ़ी इन मुद्दों को सिर्फ जातीय ध्रुवीकरण के नजरिये से नहीं, बल्कि आर्थिक स्थिरता और सामाजिक सौहार्द के नजरिये से देखती है।

जेन जेड के मुद्दों का मुख्यधारा में आना, खासकर एएसएम गठबंधन के जरिये- का सीधा मतलब है कि विधानसभा चुनाव अब भाजपा के लिए आसान नहीं रहेंगे। लेखक और पत्रकार संजय हजारिका कहते हैं, 'गठबंधन बनने का मतलब है कि भाजपा को कुछ सीटों पर कड़ी टक्कर का सामना करना पड़ेगा।'इसे भांपते हुए भाजपा ने अपने सांप्रदायिक अभियान पर थोड़ा बिरेक लगाया है। एक आपसी सहमति के तहत, पार्टी ने अपने गठबंधन सहयोगी असम गण परिषद को राजी किया है कि वह अपने हिस्से की 26 सीटों में से 13 सीटों पर मुस्लिम उम्मीदवार उतारे।

हिमंत सरमा जेन जेड के एक और भावनात्मक मुद्दे को भी कम करके दिखा रहे हैं - वह मुद्दा है असम के सांस्कृतिक प्रतीक ज़ुबीन गर्ग को इंसाफ दिलाने का। 19 सितंबर 2025 को सिंगापुर में गर्ग की मृत्यु के बाद सरमा ने जांच पूरी होने से पहले ही घोषणा कर दी थी कि गायक की हत्या की गई है, और उन्होंने उनके परिवार तथा प्रशंसकों को इंसाफ दिलाने का वादा किया था। कई लोगों को गिरफ्तार किया गया। 25 मार्च को सिंगापुर के स्टेट कोरोनर एडम नखोदा ने कथित तौर पर कहा कि गर्ग की मौत 'महज एक दुर्भाग्यपूर्ण और दुखद दुर्घटना में डूबने से हुई' थी और किसी ने भी उन्हें जबरदस्ती, दबाव डालकर या धक्का देकर पानी में नहीं डाला था। ज़ुबीन गर्ग को न्याय दिलाने का वादा बस चुपचाप दबा दिया गया है।

10 मार्च को सरकार ने अपनी 'अरुणोदय 3.0' योजना के तहत 40 लाख महिलाओं के खातों में 9,000 रुपये प्रति महिला के हिसाब से ट्रांसफर किए। 3,600 करोड़ रुपये के इस 'डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर' (डीबीटी) में चार महीने की सहायता राशि और 'बिहू बोनस' शामिल था, जिसका मकसद महिलाओं के नेतृत्व वाले परिवारों को सशक्त बनाना था। इतने बड़े पैमाने पर मुफ्त चीजों का वितरण निस्संदेह भाजपा और उसके सहयोगियों के पक्ष में काम करेगा।

लेकिन यह भी मानना होगा कि पैसा, ताकत, भावनाओं का इस्तेमाल और डिलिमिटेशन जैसे प्रशासनिक उपाय, सभी थकाऊ और कम फायदे वाले दिख रहे हैं, क्योंकि असम की जेन जेड मुश्किल सवाल पूछने लगी है। ■

सौरभ सेन कोलकाता में रह रहे स्वतंत्र लेखक और विश्लेषक हैं

युवाओं की सक्रिय भागीदारी बता रही है असम में बदलाव की प्रबल इच्छा की कहानी

'व्यक्तित्व पूजा' ही न ढहा दे केरला का यह किला

केरला के कन्नूर वाले उस जले हुए अभयारण्य से लेकर एक दशक के व्यक्ति केन्द्रित सत्ता तक

के.ए. शाजी

एशिया के बेहतरीन सरीसृप अभयारण्यों में से एक, परासिनिकडावु स्नेक पार्क से धुआं तभी उठ चुका था, जब पिनाराई विजयन केरला की सबसे शक्तिशाली राजनीतिक हस्ती नहीं बने थे। 1980 के दशक के आखिर में, अपने राजनीतिक गुरु से प्रतिद्वंद्वी बने एम.वी. राघवन से मिली चुनावी हार के बाद, कन्नूर में माकपा कार्यकर्ताओं ने गुस्सा विरोधियों पर नहीं, उस स्नेक पार्क पर निकाला, जिसका कर्ता-धर्ता राघवन से जुड़ा ट्रस्ट था। राघवन कांग्रेस नीत यूडीएफ में शामिल होकर पार्टी के अपने ही गढ़ में उसे चुनौती दे रहे थे।

इसके बाद जो हुआ, भयावह था। बाड़ों में आग लग गई। किंग कोबरा और दुर्लभ प्रजाति के सांप जिंदा जल गए। पेड़ से पक्षी गिरने लगे। जान बचाकर भाग रहे बंदर और छोटे जानवर तक शिकार बन गए। यह खौफनाक मंजर घंटों चला। तब विजयन कन्नूर के सबसे ताकतवर जिला सचिव थे। पार्टी को घटना से अलग रखने के बजाय, उन्होंने न्यूटन के तीसरे नियम का हवाला दिया और हिंसा को एक 'समान और विपरीत प्रतिक्रिया' बताया। यह उस राजनीतिक समझदारी की एक झलक थी, जिसे बेहतर पता था कि किस तरह की प्रतिक्रिया में कोई भी हद पार करने की गुंजाइश रहती है।

अब जब केरला 9 अप्रैल को होने वाले विधानसभा चुनावों की ओर बढ़ रहा है, विजयन महज कन्नूर में अपने गृह क्षेत्र धर्मदम से लगातार तीसरी बार चुनाव नहीं लड़ रहे। सत्ताधारी 'लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट' (एलडीएफ) के मुख्य प्रचारक के तौर पर, वह मतदाताओं से अपने पिछले दस साल के शासन को वैधता देने की अपील कर रहे हैं, एक ऐसा शासन, जिसने धीरे-धीरे वह लोकतांत्रिक और वैचारिक बुनियाद खोखली कर दी है, जिन पर कभी भारतीय 'वामपंथ' खड़ा दिखता था।

एलडीएफ के भीतरी-बाहरी आलोचक मानते हैं कि जो शुरुआत एक स्थिर प्रशासन के वादे से हुई थी, एक ऐसे कठोर नियंत्रण वाले राजनीतिक सिस्टम में बदल चुकी है, जो महज एक नेता पर केन्द्रित है। इसलिए, यह चुनाव निरंतरता को लेकर कम, इस बारे में ज्यादा है कि क्या केरला सत्ता का ऐसा मॉडल स्वीकार करने को तैयार है, जिसके विरोध का वामपंथ का इतिहास रहा है। एक ऐसा मॉडल जो नरेन्द्र मोदी की सत्ता वाले केन्द्रीकृत ढांचों से बहुत अलग नहीं रह गया है।

समर्थकों के लिए विजयन का राजनीतिक जीवन उनकी दृढ़ता और सतत उत्थान की कहानी है। धर्मदम के निकट पिनाराई गांव में ताड़ी श्रमिक गरीब परिवार में जन्मे विजयन का माकपा के भीतर उत्थान, गुटबाजी में उलझी रही एक पार्टी में सत्ता की गहरी समझ का प्रतीक है। ऐसे माहौल से जहां माकपा और भाजपा-आरएसएस कार्यकर्ताओं के बीच बदले वाली हत्याओं का सिलसिला था, जहां देसी बम और चाकू राजनीतिक संदेश का हथियार थे, विजयन ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरे जिसमें सत्ता पर पकड़ बनाने की क्षमता थी, जो विरोधियों को बेअसर कर सकता था, अनुशासन बना सकता था। उस राजनीतिक संस्कृति की परछाई कभी पूरी तरह दूर नहीं हुई। 2012 में माकपा के बागी नेता टी.पी. चंद्रशेखरन की बर्बर हत्या को लोग आज भी असहमति के प्रति असहिष्णुता के प्रतीक के तौर पर याद करते हैं। विजयन ने लगातार इसमें अपनी भूमिका से इनकार किया है, लेकिन विवाद कायम है; और माकपा के उन कार्यकर्ताओं को बार-बार पैरोल मिलने, उनके साथ 'खास' बर्ताव के आरोपों ने इसे और गहराया है, जो इस मामले में दोषी थे।

चंद्रशेखरन की विधवा और अब वटकरा से यूडीएफ समर्थित उम्मीदवार के.के. रामा का आरोप है- "विजयन द्वारा पोषित हिंसा की राजनीति ने एक अन्यथा प्रगतिशील माने जाने वाले केरला में लोकतंत्र का मजाक बना दिया है।" छात्र राजनीति से शुरू कर माकपा राज्य सचिव तक के अपने इतने वर्षों में विजयन ने एक व्यवस्थित और अडिग इंसान की पहचान बनाई। पार्टी के वरिष्ठ सहयोगी वी.एस. अच्युतानंदन के साथ उनकी लंबी लड़ाई तब खत्म हुई, जब विजयन का पार्टी तंत्र पर लगभग पूर्ण नियंत्रण हो चुका था।

जब 2016 में विजयन ने पदभार संभाला, ऐसा कोई संकेत नहीं था कि वह केरला की राजनीतिक संस्कृति ही बदल डालेंगे। उनका राजनीतिक सफर बहुत करीब से देखने वाले वरिष्ठ पत्रकार के.ए. एंटनी कहते हैं- "विडंबना ही है कि वह निर्णायक मोड़ एक संकट के रूप में आया। यह 2018 की बाढ़ थी जिसके बाद निपाह का प्रकोप और फिर कोविड महामारी आई। कोविड के दौरान उनकी रोजाना की प्रेस ब्रीफिंग, जिनकी स्पष्टता और निरंतरता की दूर तक ऐसी तारीफ हुई कि सारा राजनीतिक ध्यान एक व्यक्ति पर केन्द्रित होकर रह गया, वह विजयन थे।"

रिटायर्ड प्रोफेसर, लेखक और माकपा के पूर्व कार्यकर्ता डॉ. आजाद मलायट्टिल कहते हैंः "पिछले एक दशक में बार-बार आए संकटों की वजह से सारी ताकत एक ऐसे मुख्यमंत्री के हाथों में सिमट गई, जिसने अधिकार और जनसंपर्क को एक साथ मिला दिया। वह खुद ही 'सिस्टम' बन गए, और पार्टी के अंदर के लोकतांत्रिक तरीके खत्म हो गए।" यह केरल में 'मोदी-मॉडल' का प्रवेश था।

सत्ता के इस एकीकरण का विरोध भी हुआ। उनके कार्यकाल में सबरीमाला का मुद्दा सबसे ज्यादा गरमागरम और विवादित मुद्दों में से एक रहा। एलन शुहैब और थाहा फ़ज़ल जैसे छात्रों की यूएपीए में गिरफ्तारी से चिंता बढ़ी कि कहीं विरोध की आवाज ही अपराध न मान ली जाए। फर्जी मुठभेड़ों में हत्याओं के आरोप और पुलिसिया ज्यादतीयों ने राज्य की बढ़ती जोर-जबरदस्ती वाली भूमिका को लेकर लोगों की चिंताएं बढ़ा दीं। काले झंडे वाले विरोध-प्रदर्शन सुरक्षा के लिए खतरा बन गए और विरोध करने वाले यूथ कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साथ बल-प्रयोग हुआ- इन हमलों को विजयन ने "जान बचाने वाले अभियान" बताया।

पय्यानूर के समाज-सेवी एन. सुब्रमण्यम कहते हैं, "पुलिस की ताकत पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता दर्शाती है कि विरोध की आवाज उन्हें किस कदर असहज करती है, और वह बातचीत के बजाय उस पर काबू करने को ज्यादा जरूरी समझते हैं।" मुख्यमंत्री की बेटी के कॉरपोरेट लेन-देन से जुड़े वित्तीय मामलों को लेकर भी आरोप हैं। उनके दामाद पी.ए. मोहम्मद रियास का मंत्री बनना सबूत के तौर पर देखा जा रहा है कि सत्ता को किस तरह एक छोटे से दायरे में सीमित किया जा रहा है।

कभी विजयन के भरोसेमंद साथी रहे वयोवृद्ध माकपा नेता जी. सुधाकरन बाद के वर्षों में उनके मुखर आलोचक बन गए; और अब वह अंबालापुझा से यूडीएफ समर्थित निर्दलीय उम्मीदवार के तौर पर चुनाव लड़ रहे हैं। अंबालापुझा वही चुनावी क्षेत्र है, जिसकी शोहरत पुन्नाप्रा और वायलर जैसी दो उन विद्रोहों स्थानों के रूप में है, जहां से केरला की वामपंथी राजनीति को खाद-पानी मिला। कुट्टानाड के पर्यावरण कार्यकर्ता भद्रन भास्करन कहते हैं, "माकपा और सरकार- दोनों ही अब मुख्यमंत्री की निजी मिल्कियत हैं। भाकपा जैसे गठबंधन के सहयोगी दल तो बस उनके अधीन होकर काम कर रहे हैं।" भास्करन ने तटीय खनिज रेत के खनन और उससे होने वाले पर्यावरणीय नुकसान के मुद्दे पर पार्टी छोड़ दी थी।

"विजयन के राज में हमने जो देखा, वह है संस्थाओं का दमन।" यह टिप्पणी माकपा के पूर्व नेता सी.पी. जॉन की थी, जो एम.वी. राघवन के साथ पार्टी छोड़ चुके हैं। राघवन तिरुवनंतपुरम से यूडीएफ के उम्मीदवार हैं। विचारक और शिक्षाविद जे. रघु जोर देकर कहते हैं, "पार्टी ने न सिर्फ अपने सिद्धांत छोड़ दिए, उसने उन्हें अपने हिसाब से नए सिरे से गढ़ लिया है।"

लेखक और सांस्कृतिक आलोचक एम.एन. करासेरी टिप्पणी करते हैं, "दो वैचारिक धुरियों पर होने के बावजूद, मोदी और विजयन दोनों ने सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित कर ली और नेता-केन्द्रित राजनीतिक नैरेटिव गढ़े। वे सिर्फ अपने पूर्ण नियंत्रण वाली संचार रणनीतियों पर भरोसा करते हैं। केरला में इसका नतीजा एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति के रूप में सामने आया है, जहां बहसें चुनाव नीतियों के बजाय मुख्यमंत्री की छवि के इर्द-गिर्द ज्यादा घूमती हैं।"

विपक्ष के नेता वी.डी. सतीशन, जो इस चुनाव में कांग्रेस का चेहरा भी हैं, कहते हैंः "सरकार ने अपना जनसंपर्क चमकाने के लिए सरकारी खजाने से करोड़ों लुटा दिए। जिधर भी देखें, उनका ही चेहरा दिखेगा- सार्वजनिक परिवहन की बसों पर, सड़क किनारे होर्डिंग्स पर, टीवी पर, अखबारों के पहले पन्ने पर... हर जगह लगे उनके कटआउट्स देखकर हमें यह सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि क्या हम वाकई केरला में ही रह रहे हैं? यह मुझे उस बदनाम 'इंडिया शाइनिंग' की याद दिलाता है। ऐसे अभियान उलटा असर डालते हैं।" पार्टी छोड़कर मलप्पुझा से कांग्रेस से चुनाव लड़ रहे माकपा के पूर्व नेता ए. सुरेश कहते हैं, "पिनाराई के नेतृत्व में पार्टी बेशक मजबूत हुई है, लेकिन संकीर्ण भी हो गई है।"

राज्य की सत्ता में पिनाराई विजयन के इस एक दशक ने निस्संदेह केरला का कायाकल्प किया, लेकिन इस सफलता की कीमत को लेकर कुछ बुनियादी सवाल भी खड़े कर दिए हैं। और इस तरह, यह कहानी घूम-फिरकर वापस पिनाराई गांव पर आ ठहर जाती है। परप्पुरम पर। सादगी भरे उन ठिकानों पर, जहां कभी केरल का कम्युनिस्ट आंदोलन बड़े शांत माहौल में संवाद और सामूहिक कल्पनाशीलता के जरिये आकार ले रहा था। ■

खोखली होती लोकतांत्रिक और वैचारिक बुनियाद पिनाराई विजयन के लिए बनी बड़ी चुनौती

> यह चुनाव निरंतरता को लेकर कम, इस बारे में ज्यादा है कि क्या केरला सत्ता का ऐसा मॉडल स्वीकार करने को तैयार है, जिसके विरोध का वामपंथ का इतिहास रहा है। एक ऐसा मॉडल जो नरेन्द्र मोदी की सत्ता वाले केन्द्रीकृत ढांचों से बहुत अलग नहीं रह गया है

लाखों छोटे कारोबार बंद होने के कगार पर

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम केन्द्र सरकार से खैरात नहीं मांग रहे, वे तो बस जिंदा रहने की व्यवस्था चाहते हैं

रश्मि सहगल

प्रवासी मजदूर एक बार फिर बेरोजगार, बेघर हो गए हैं। उनके हाथ खाली हैं और हजारों अपने-अपने गृह राज्यों की ओर लौट रहे हैं। देश के प्रमुख टेक्सटाइल मैन्युफैक्चरिंग हब में से एक सूरत में एक झटके में एक लाख से ज्यादा मजदूरों को शहर छोड़ते देखा गया। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि गैस की कीमतें बढ़कर 500 रुपये प्रति किलो हो गई थीं, जिससे उनके लिए खाना बनाना नामुमकिन हो गया था। उधना रेलवे स्टेशन पर मर्द-औरतों की भारी भीड़ देखी गई। वे सब उत्तर प्रदेश, ओडिशा और बिहार वापस जाने के लिए ट्रेन में जगह पाने की कोशिश कर रहे थे।

पावर लूम चलाने के लिए तीन लाख से ज्यादा मजदूरों की जरूरत होती है, लेकिन हालात ऐसे हो गए कि फैक्टरी मालिकों को काम के घंटे कम करने पड़े और उत्पादन एवं लागत को काबू में रखने के लिए हफ्ते में दो दिन यूनिटें बंद रखनी पड़ीं। धागे की बढ़ती कीमतों के बाद अब मांग में भी गिरावट आ गई है, क्योंकि निर्यात के लिए तैयार माल या तो बंदरगाहों पर पड़ा है या फिर रास्ते में अटका हुआ है।

पश्चिम एशिया में चल रहे युद्ध की वजह से कमर्शियल और घरेलू, दोनों तरह की एलपीजी की भारी कमी हो गई है। इससे इंडस्ट्रीज, होटल और रेस्टोरेंट, फाउंड्री और दूसरे एमएसएमई (सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम) का काम ठप हो गया है। सरकार लोगों के डर को कम करने के लिए कुछ नहीं कर रही। हालात काफी हद तक वैसे ही हैं, जैसे हमने कोविड के दौरान देखे थे। उत्तर प्रदेश से आकर दक्षिण-पश्चिम दिल्ली के संगम विहार में घरेलू काम करने वाली 53 साल की राखी सक्सेना ने अपना सामान बांधकर घर लौटने का फैसला कर लिया है। वह कहती हैं, '19 किलो का सिलेंडर ब्लैक में 5,000 रुपये में बिक रहा है। इसे खरीदने की हिम्मत कौन करे? 7-8 महीनों के लिए लॉकडाउन लगने की भी अफवाहें उड़ रही हैं। ऐसे में घर लौट जाना ही बेहतर है, कम-से-कम वहां लकड़ी जलाकर खाना तो बना लेंगे।'

उत्तरी दिल्ली के आजाद मार्केट, चांदनी चौक, सदर बाजार और लाजपत नगर में मालिकों ने प्रवासी मजदूरों की संख्या में कमी देखी है। कई आरडब्ल्यूए घरेलू काम करने वालों और मजदूरों के पलायन की शिकायत कर रहे हैं।

बेरी वाला बाग के आरडब्ल्यूए अध्यक्ष मोहम्मद सईद खान ने कहा, 'मजदूर घर लौट रहे हैं और नए मजदूर आ नहीं रहे। सरकार के आश्वासन चाहे जो भी हों, ब्लैक मार्केट में घरेलू एलपीजी सिलेंडर 4,000 रुपये में बिकने के कारण, मजदूरों को बहुत ज्यादा मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।' सरकार द्वारा घरों को प्राथमिकता दिए जाने के कारण कमर्शियल इस्तेमाल करने वालों को अपनी सामान्य एलपीजी सप्लाई का सिर्फ 20 फीसद ही मिल पा रहा है।

कोयंबटूर में फाउंड्री सेक्टर पर बंदी का खतरा मंडरा रहा है, क्योंकि यह कोर बेकिंग, लैडल प्रीहीटिंग और हीट ट्रीटमेंट प्रक्रियाओं के लिए एलपीजी पर निर्भर है। जब इस सेक्टर के किसी एक हिस्से पर असर पड़ता है, तो ऑटोमोटिव, पंप, कंप्रेसर, वाल्व और जनरल इंजीनियरिंग जैसे कई दूसरे उद्योगों पर भी इसका असर होता है। एक महीने में सप्लाई में रुकावट की वजह से कार्बाइड, इंडस्ट्रियल ऑयल, लुब्रिकेंट, पैकिंग मटीरियल और पेट्रोलियम-आधारित केमिकल जैसे बाइंडर, कोटिंग और रेजिन की कीमतें बढ़ गई हैं, जिससे एमएसएमई के लिए प्रोडक्शन मुश्किल होता जा रहा है।

पश्चिम एशिया के युद्ध ने प्रवासी मजदूरों को अपने गृह-राज्य लौटने को मजबूर कर दिया है

*

इस संकट का असर निर्यात प्रतिबद्धताओं पर भी पड़ रहा है। उत्पादन में देरी से डिलीवरी शेड्यूल का पालन मुश्किल हो रहा है, जिससे कंपनियों को काफी ज्यादा खर्च पर एयर फ्रेट का सहारा लेना पड़ रहा है। हवाई किराये में बढ़ोतरी ने बिजनेस से जुड़े सफर को बहुत महंगा बना दिया है। इंडस्ट्री ने सरकार से गुजारिश की है कि वह इंडस्ट्रियल इस्तेमाल के लिए एलपीजी की बिना रुकावट सप्लाई सुनिश्चित करे, पेट्रोलियम-आधारित इनपुट की उपलब्धता को स्थिर करे, पीएनजी जैसे दूसरे ईंधनों की ओर बदलाव में मदद करे, और लेबर एवं सप्लाई चेन से जुड़ी चुनौतियों को हल करे।

एमएसएमई का जीडीपी में लगभग 30 फीसद का योगदान होने, निर्यात में 45 फीसद की हिस्सेदारी रखने और 24 करोड़ लोगों को रोजगार देने के बावजूद, उन्होंने ज्यादातर बिना सरकारी मदद के ही काम किया है।

एमएसएमई मंत्री जीतन राम मांझी ने लोकसभा में लिखित जवाब में बताया कि 10 लाख रजिस्टर्ड एमएसएमई में से 49,342 बंद हो गए हैं, जिसके कारण पिछले एक दशक में 3,17,641 नौकरियां चली गईं। जो एमएसएमई अब भी चल रहे हैं, उन्हें भी पिछले चार हफ्तों में और ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा है। सिर्फ उत्तर प्रदेश में ही 96 लाख एमएसएमई हैं। इंडियन इंडस्ट्रीज एसोसिएशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष दिनेश गोयल ने इस बात पर जोर दिया है कि एल्युमीनियम, लौह और अलौह धातुओं की कीमतों में हालिया बढ़ोतरी को नियंत्रित करने की जरूरत है, क्योंकि इसका असर मशीनरी और भवन निर्माण सामग्री बनाने वाले उद्योगों पर पड़ता है। गोयल ने समुद्री बीमा की अनुपलब्धता के कारण अंतरराष्ट्रीय लॉजिस्टिक्स लागत में हुई भारी बढ़ोतरी पर भी अपनी बात रखी है। घरेलू खरीदारों द्वारा सप्लाई के ऑर्डर रद्द किए जाने और सप्लाई में देरी होने पर जुर्माना लगाए जाने से स्थिति और भी बदतर हो गई है।

> एमएसएमई जीडीपी में लगभग 30 फीसद का योगदान करते हैं। कुल निर्यात में 45 फीसद हिस्सेदारी इन्हीं की होती है। ये 24 करोड़ लोगों को रोजगार देते हैं। सरकार के पास इनकी आपात मदद की योजना तैयार करने का काफी समय था, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ

एसोसिएशन ऑफ इंडियन एंटरप्रेन्योर्स के राष्ट्रीय अध्यक्ष के.ई. रघुनाथन ने दूरदर्शिता की कमी पर जोर दिया है। वह कहते हैं, 'यह देखते हुए कि हमारी 80 फीसद एलपीजी होर्मुज जलडमरूमध्य से आती है, सरकार के पास एमएसएमई की मदद की आपात योजना बनाने के लिए काफी समय था। लेकिन सहायता व्यवस्था कहां है? ज्यादातर एमएसएमई कितने कमजोर हैं, यह अच्छी तरह जानने के बावजूद, इस संकट से उबरने में उनकी मदद के लिए कुछ भी नहीं किया गया।' अर्थशास्त्री अरुण कुमार बताते हैं कि ज्यादातर सूक्ष्म इकाइयां- जिनमें औसतन 1.7 लोग काम करते हैं। यानी इनमें वस्तुतः अकेला आदमी ही काम करता है- सबसे ज्यादा प्रभावित हुई हैं 'क्योंकि उनमें कीमतों में हुई बढ़ोतरी का बोझ सहने की क्षमता नहीं।' प्रोफेसर कुमार आगाह करते हैं कि ऐसी ही स्थिति रही तो मंदी आ सकती है।

घाटे को काबू में रखने के लिए सरकार द्वारा 100 करोड़ रुपये के पैकेज की घोषणा के बावजूद, कई जरूरी चीजों की कमी बनी हुई है। चीनी बनाने में जरूरी सल्फ्यूरिक एसिड की कमी से इसकी कीमत 15 हजार रुपये प्रति टन से बढ़कर 60 हजार प्रति टन हो गई है। ऑटोमोटिव और रक्षा क्षेत्रों में इस्तेमाल होने वाले पॉलिएस्टर, पॉलीमर और पॉलीप्रोपाइलीन की कीमतें भी तेजी से बढ़ी हैं।

टेक्सास के ऊर्जा विशेषज्ञ अनस अलहाजी ने एक इंटरव्यू में कहा कि जहां चीन के पास 1.4 अरब बैरल कच्चा तेल रिजर्व में है, वहीं भारत के पास केवल 10 करोड़ बैरल है। अलहाजी ने कहा कि भारत को अपने रिजर्व को कम-से-कम 40 करोड़ बैरल तक बढ़ाना होगा, और वह भी तेजी से। भारत अभी उस तेल पर हर महीने 20 करोड़ डॉलर ज्यादा खर्च कर रहा है, जिसे उसे रूस से आयात करने की 'इजाजत' मिली हुई है। यह उस कीमत से तीन गुना ज्यादा है, जो उसे अमेरिका के आगे झुकने से पहले मिल रही थी।

रघुनाथन का मानना है कि वैश्विक टैरिफ युद्ध, भू-राजनीतिक संघर्षों, कच्चे माल की आपूर्ति में रुकावट और घरेलू नीति से जुड़ी अनिश्चितताओं से लगने वाले झटकों से लाखों छोटे कारोबार बंद होने की कगार पर पहुंच गए हैं। अब यह महज एक चक्रीय मंदी नहीं रही, यह एक गहरे ढांचागत संकट का संकेत है। वह कहते हैं, 'फिर भी, हमारी नीतिगत प्रतिक्रिया असंगत है। अगर तुरंत और निर्णायक हस्तक्षेप नहीं हुआ, तो परिणाम बहुत गंभीर होंगे- बड़े पैमाने पर कारोबार बंद होंगे, नौकरियां जाएंगी और भारत के उद्यमिता-तंत्र को लंबे समय का नुकसान पहुंचेगा।'

रघुनाथन के सुझाव के अनुसार, टैरिफ, व्यापार और टैक्स से जुड़े मामलों पर पांच साल का एक रोडमैप तुरंत घोषित किया जाना चाहिए। 'सरकार को एमएसएमई वॉर एंड टैरिफ मिटिगेशन फंड बनाना चाहिए, और साथ ही वैश्विक उथल-पुथल से प्रभावित इकाइयों को सीधे आर्थिक मदद देनी चाहिए।' अन्य उपायों में आपातकालीन क्रेडिट सहायता शुरू करना, ड्यूटी को तर्कसंगत बनाना और जरूरी इनपुट की किफायती आपूर्ति के लिए तंत्र बनाना शामिल है। उन्होंने कहा, 'एमएसएमई कोई बैसाखी नहीं मांग रहे हैं, वे तो बस अपना अस्तित्व बचाना चाहते हैं।'

प्रोफेसर अरुण कुमार का मानना है कि भले युद्ध रुक जाए, आर्थिक स्थिति सुधरने में 6-7 माह लगेंगे। समस्या यह है कि भारत ने अपनी आयात निर्भरता घटाने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। पांच दशक पहले, भारत की तेल आयात पर निर्भरता लगभग 30 फीसद थी; 2026 में यह बढ़कर रिकॉर्ड 88.6 फीसद तक पहुंच गई। ■

महिलाएं कम ही लिखती हैं आत्मकथा

बताने के मुकाबले अधिक होता है छिपाने का भार। लेखन से ज्यादा उनके चरित्र की चिंता लोगों को अधिक सताती है

क्षमा शर्मा

हाल ही में आकाशवाणी ने स्त्री आत्मकथाओं पर एक कार्यक्रम किया था। इसमें वरिष्ठ लेखिका ममता कालिया, अलका सिन्हा और इस लेखिका ने भाग लिया। बातों-बातों में बेहद दिलचस्प निष्कर्ष भी निकले। सभी इस बात पर एकमत थे कि स्त्रियों के लिए आत्मकथाएं लिखना एक कठिन काम है।

देखा जाए तो स्त्रियों के लिए लिखना ही एक मुश्किल कार्य है। उनकी भूमिका को मात्र चौके-चूल्हे तक ही सीमित माना जाता रहा है। वह तो भला हो इस देश के लोकतंत्र का, आजादी की लड़ाई, समझदार नेताओं का कि उन्होंने उस समय ही स्त्रियों की भूमिका को समझा। उनकी रक्षा के लिए तरह-तरह के कानून भी बनाए। उन्हें पढ़ने-लिखने के अवसर मिले। 1975 में जब संयुक्त राष्ट्र ने अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया, तो मीडिया में स्त्रियों को जगह मिली। जगह मिलना या उनकी विजिबिलिटी ने उन्हें ताकतवर भी बनाया। महिलाएं बड़ी संख्या में लेखन में भी सामने आईं। यों अपने यहां महान लेखिका महादेवी वर्मा को कौन भूल सकता है, जिन्होंने दुखियारी स्त्रियों के बारे में जैसा लिखा, अगर उनकी रचनाओं का अनुवाद हुआ होता. वह किसी सिमोन या जर्मन ग्रियर से बीस ही बैठतीं।

खैर, रेडियो के उस कार्यक्रम के बाद ममता जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार देने की घोषणा की गई। और जैसा कि अकसर होता है कि उनकी पुस्तक और उनके लिखे को लेकर विवाद होने लगा। जिस पुस्तक, जीते जी इलाहाबाद पर यह पुरस्कार मिला, वह एक तरह से ममता जी की आत्मकथा ही है। इसमें उनके जीवन से जुड़े प्रसंग हैं। महिलाएं अगर अपने जीवन से जुड़े प्रसंग लिखने लगें, तो न जाने कितनी तलवारें अकारण ही उनकी ओर खिंच जाती हैं। मैग्निफाइंग लेन्स लगाकर उनकी हर बात की आलोचना की जाने लगती है।

एक बार राजेंद्र यादव जी ने कहा था कि महिलाएं आत्मकथा क्यों नहीं लिखती हैं। उनका सवाल जायज था। बहुत सी लेखिकाएं आत्मकथा लिखने से बचती हैं। क्योंकि वे अपने निजी जीवन के प्रसंगों को सार्वजनिक नहीं करना चाहतीं। क्योंकि कई महिलाओं के अनुसार, ये अपने घर में दूसरों को झांकने का अधिकार देने जैसा है। फिर लिख भी दें, तो तरह-तरह की आफतें उनका पीछा नहीं छोड़तीं। महिलाओं को पीटने का सबसे आसान हथियार है, उनके चरित्र पर लांछन लगाना। एक स्त्री ने जो जिया, वह लिख दिया, तो पाठकों को या आलोचकों को वही देखना चाहिए, न कि उसके पीछे पड़ जाना चाहिए। इसीलिए वे लिखने से बचती भी हैं। आज भी स्त्री - चाहे वह लेखिका हो, नेता हो, पत्रकार हो, अध्यापिका हो, अभिनेत्री हो - उसको देखने के मानक वही हैं, जो सदियों से चले आए हैं।

अनुभव बताते हैं कि जिन लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाएं लिखी हैं, उन्हें अकसर बहुत विवाद और आलोचना का सामना करना पड़ा है। ऐसा क्यों लिखा, वैसा क्यों लिखा। चंद्रकिरण सोनरेक्सा की आत्मकथा पिंजरे की मैना में वह जिस तरह से अपने पारिवारिक जीवन, खास तौर से पति के तौर-तरीकों का वर्णन करती हैं, इससे यही बात साबित होती है कि स्त्रियों को अपने ही घर में कितने दबाव में रहना पड़ता है। ऐसे में स्त्री यदि अपने जीवन के बारे में लिखे, पति से इतर किसी प्रेम प्रसंग के बारे में लिख दे ,तो उसकी खैर नहीं रहती। उसे यह भी डर रहता है कि जो लिख रही है, अगर माता- पिता की निगाह उस पर पड़ी, तो वे क्या कहेंगे। भाई-भाभी, अन्य नाते-रिश्तेदार क्या सोचेंगे। पति की प्रतिक्रिया क्या होगी। बेटा क्या कहेगा। बेटी हुई तो उसकी शादी में कोई अड़चन न आ जाए। यानी कि एक कलम और सौ पहरे। जो स्त्रियां घर से बाहर निकली हैं, अपनी चारदीवारियों से बाहर जाकर जगह बनाई है, उनमें से कइयों की आत्मकथाएं पढ़ते हुए, उनके साहस को सलाम करने का भी मन करता है। मशहूर लेखिका रमणिका गुप्ता ने अपनी आत्मकथा आपहुदरी में ऐसे बहुत से प्रसंगों का जिक्र किया है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वे जहां भी किसी काम से जाती हैं, उनसे बहुत से फेवर्स की मांग की जाती है। कोई-कोई तो सारे कपड़े उतारकर उनके सामने आ जाता है। लेकिन वे हार नहीं मानतीं। बताते चलें कि रमणिका सिर्फ लेखिका ही नहीं थीं, बल्कि ट्रेड यूनियंस में भी काम करती थीं। एमएलए भी रही थीं। स्त्रियों से उम्मीद की जाती है कि वे ऐसा कुछ न लिखें, जिससे कि बाकी की स्त्रियां उनसे प्रेरित होकर बिगड़ जाएं। स्त्रियों के बिगड़ने की परिभाषा भी पुरुषवादी दुनिया ने अपने हितों को देखते हुए, अपने हिसाब से तय की है।

> स्त्री अगर अपने जीवन की सचाई बताएगी, तो लोग उसे जीने नहीं देंगे। उस पर तरह-तरह के आरोप लगाएंगे। तथाकथित चरित्र के कोड़े उसे पीटेंगे। इसीलिए शायद कम महिलाएं आत्मकथा लिखती हैं। यह भी सच है कि इसी डर से वे पूरा सच नहीं बता पातीं

अरसा पहले लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री ने आत्मकथा लिखी थी- लगता नहीं है दिल मेरा। इसमें वह अपने जीवन के बारे में बताते हुए एक संपादक का जिक्र भी करती हैं जो उनसे बार-बार कहते हैं कि वह कितनी आकर्षक और सुंदर हैं, जो वे थीं भी। लेकिन क्यों लेखिका ऐसे छल-कपट से भरे पुरुषों से बार-बार मिलती है। वह उनके निहितार्थ को क्यों नहीं समझ पाती। इसी तरह अभिनेत्री और निर्देशक सीमा कपूर की पुस्तक यूं गुजरी है अब तलक है। उन्होंने मशहूर अभिनेता ओम पुरी से विवाह किया। वह उन्हें तरह-तरह से सताते हैं। उनके बच्चे को अपना नहीं कहते। अपने ही एक मित्र पर उसके बारे में आरोप लगाते हैं, फिर भी लौट-फिरकर वह सीमा के जीवन में वापस आ जाते हैं। आखिर ऐसे आदमी को सीमा बारंबार अपने जीवन में प्रवेश की अनुमति क्यों देती हैं। लेखिका प्रभा खेतान की आत्मकथा अन्या से अनन्या तक भी एक समय में बहुत चर्चित रही थी। प्रभा एक लेखिका ही नहीं सफल उद्योगपति भी थीं। वह जिस पुरुष के प्रेम में थी, वह पहले से विवाहित और पांच बच्चों का पिता था। फिर भी वह उन पर शक करता था। वह बार -बार कहती हैं कि उन्हें ऐसे संबंध से अपमान और अकेलेपन के अलावा कुछ नहीं मिला। मन्नू भंडारी की आत्मकथा एक कहानी यह भी में वह अपने पति राजेंद्र यादव के न जाने ऐसे कितने प्रसंगों का उल्लेख करती हैं। निर्मला जैन की आत्मकथा जमाने में हम पढ़कर लगा कि लेखिका खुद से ही सम्मोहित हैं। अपने अलावा उन्हें हर एक खलनायक और बुरा लगता है। तसलीमा नसरीन की द्विखंडित को भी लेकर बहुत विवाद हुआ। उन्हें तो लेखन के कारण ही अपना देश तक छोड़ना पड़ा। मैत्रेयी पुष्पा की दो खंडों में कस्तूरी कुंडल बसे और गुड़िया भीतर गुड़िया भी विवादों से नहीं बच सकी।

बरसों पहले बेबी हालदार की आत्मकथा ऐलो आंधारी बहुत चर्चित रही थी। बेबी एक घरेलू सहायिका के रूप में प्रबोधकुमार गोविल के यहां काम करती थीं। उन्होंने ही इसे लिखने के लिए प्रेरित किया था। घरेलू सहायिकाओं का जीवन कितना कठिन है, वह इसे बताती हैं। दलित लेखिका बेबी कांबले की आत्मकथा हमारा जीवन पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जातिवाद का इतना भयानक चित्रण वही कर सकता है, जिसने इसे भोगा है। नलिनी जमीला की आत्मकथा एक सेक्स वर्कर के जीवन की कठिनाइयों का विस्तार से वर्णन है। कहा जाता है कि कोई सेक्स वर्कर अपनी बेटी को इस काम में नहीं डालना चाहती। मगर नलिनी कहती हैं कि अगर उनकी लड़की ऐसा करे, तो कोई परहेज नहीं। मध्यवर्गीय स्त्रियों के मुकाबले इन आत्मकथाओं में संघर्षों की एक कठिन दास्तां दिखाई देती है।

प्रोफेसर गरिमा श्रीवास्तव ने भारत और देश-विदेश की महिलाओं द्वारा लिखी आत्मकथाओं पर पुस्तक लिखी है- चुप्पियां और दरारें। गरिमा ने इसमें असंख्य आत्मकथाओं का जिक्र किया है।

कुल मिलाकर कहना यह कि स्त्री अगर अपने जीवन की सचाई बताएगी, तो लोग उसे जीने नहीं देंगे। उस पर तरह-तरह के आरोप लगाएंगे। तथाकथित चरित्र के कोड़े उसे पीटेंगे। इसीलिए शायद कम महिलाएं आत्मकथा लिखती हैं। यह भी सच है कि बहुत सी इसी डर से उनमें पूरा सच नहीं बता पातीं। बताने के मुकाबले छिपाने का भार बहुत अधिक होता है। दुर्भाग्य है कि स्त्री के लिखने से ज्यादा, उसके चरित्र की चिंता लोगों को अधिक सताती है। ■

क्षमा शर्मा वरिष्ठ लेखिका और पत्रकार हैं

संडे नवजीवन
रविवार, 05 अप्रैल, 2026 | www.navjivanindia.com

अमेरिका को चुकानी होगी विस्तारवाद की कीमत

इसके ठीक उलट, ईरान युद्ध पर चीन की प्रतिक्रिया बेहद संयमित रही है। सीधे टकराव से बचते हुए, इसने अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित किया है

अशोक स्वैन

चीन को मजबूती दे सकती है अमेरिकी नेतृत्व की कमजोरी

डॉनल्ड ट्रंप के दूसरे कार्यकाल ने उस वैचारिक चादर को उड़ा दिया है जिससे अमेरिका ने कभी वैश्विक वर्चस्व की अपनी चालों को छिपा रखा था। पहले की अमेरिकी सरकारें अपनी चालों को 'लोकतंत्र की रक्षा' और 'नियम आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था' के रूप में पेश करती थीं, लेकिन अब उन्हें बड़ी ढिठाई से लेन-देन वाले शब्दों में बदल दिया गया है।

यह मामूली नहीं बल्कि कहीं गहरा बदलाव है और यह ऐसे समय में सामने आया है जब चीन के बढ़ते कद के कारण अमेरिकी वर्चस्व को चुनौती मिल रही है। हालांकि, विडंबना यह है कि जोर-जबरदस्ती वाली कूटनीति और आक्रामक विस्तारवाद के जरिये चीन की प्रभुता का मुकाबला करने की कोशिश में ट्रंप ने जो रणनीति अपनाई, उसने अमेरिकी वर्चस्व की गिरावट को और तेज कर दिया है और इससे उसके मुख्य प्रतिद्वंद्वी और मजबूत हुए हैं।

अमेरिका की राष्ट्रीय सुरक्षा के बारे में ट्रंप के सिद्धांत में, चीन अब कोई वैचारिक विरोधी नहीं, बल्कि एक आर्थिक प्रतिस्पर्धी है। अब वह पुरानी नैतिक दिखावट जाती रही- लोकतंत्र और मानवाधिकारों का वह मुलम्मा जो कभी वैश्विक नेतृत्व के अमेरिका के दावे का आधार था। आर्थिक संरक्षणवाद और भौतिक फायदे पर ध्यान केन्द्रित करने की यह संकीर्ण सोच, इसकी सार्वभौमिक अपील या स्वीकृति में विश्वास और/या रुचि की कमी को दिखाती है। यह बदलाव कई लोगों को व्यावहारिक लगा- खासकर उनके 'अमेरिका फर्स्ट' और 'मागा' समर्थकों को- लेकिन मूल्यों की इस बलि की कीमत अमेरिका को अपने प्रभाव को खोकर चुकानी पड़ी है।

नए इलाकों पर कब्जा करने की ट्रंप की खुली महत्वाकांक्षा और पश्चिमी गोलार्ध पर अपना दबदबा बनाने के उनके दावों ने अमेरिका की साख को और कमजोर किया है। आर्थिक दबाव और युद्ध के जरिये अमेरिका की सर्वोच्चता को फिर से स्थापित करने की कोशिश एक नए तरह के साम्राज्यवाद की साजिश का संकेत देती है, लेकिन यह तरीका आज की शक्ति के स्वरूप को ठीक से नहीं समझता। उदाहरण के लिए, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका में प्रभाव अब सैन्य मौजूदगी से नहीं बल्कि व्यापार, निवेश और लंबे समय तक चलने वाले आर्थिक जुड़ाव से तय होगा। 'ग्लोबल साउथ' के साथ चीन के बढ़ते रिश्तों को जबरदस्ती से खत्म नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत, अमेरिका की सख्त नीतियां इस क्षेत्र को बीजिंग के प्रभाव क्षेत्र की ओर और धकेल रही हैं।

ईरान के खिलाफ शुरू किए गए सैन्य अभियान- जिसका मकसद उसकी रणनीतिक क्षमताओं को कमजोर करना और क्षेत्रीय समीकरणों को बदलना था- ने अमेरिका किस हद तक जाकर अपनी ताकत का इस्तेमाल कर सकता है, इसे भी उजागर कर दिया है। जिसे एक तेज और निर्णायक ऑपरेशन के तौर पर पेश किया गया था, वह अब एक लंबा और अनिश्चित संघर्ष बन गया है; जिसमें ईरान अपनी शर्तों पर एक असमान युद्ध लड़ रहा है।

इस युद्ध की अमेरिका के लिए कुछ और रणनीतिक कीमतें भी हैं। गठबंधनों में और ज्यादा तनाव पैदा करने और संकट के समय अमेरिकी नेतृत्व की विश्वसनीयता पर सवाल उठाने के अलावा, इस संघर्ष ने अमेरिका को पश्चिम एशिया में अपने सैन्य संसाधनों और राजनीतिक ध्यान- दोनों को लगाने के लिए मजबूर कर दिया है। इससे भारत-प्रशांत क्षेत्र में प्रभावी ढंग से काम करने की उसकी क्षमता पर असर पड़ेगा। इस भटकाव से चीन को अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए रणनीतिक जगह मिल जाती है- आर्थिक और सैन्य, दोनों लिहाज से। यह पैटर्न जाना-पहचाना है। इराक और अफगानिस्तान में अमेरिका के पिछले उलझनों ने बीजिंग को कम-से-कम दखल के साथ आगे बढ़ने का मौका दिया था। आज भी कुछ वैसी ही स्थिति बन रही है, फर्क बस इतना है कि आज चीन की क्षमताएं कहीं ज्यादा बढ़ चुकी हैं।

ईरान युद्ध पर चीन की प्रतिक्रिया बेहद संयमित और सोची-समझी रही है। इस संघर्ष में सीधे उलझने के बजाय, बीजिंग ने खुद को एक सतर्क दर्शक के तौर पर पेश किया है; उसने सीधे टकराव से बचते हुए अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित रखा है और साथ ही ईरान को खुफिया जानकारी भी मुहैया कराई है। यह तरीका चीन को, बिना कोई खास कीमत चुकाए, एक ऐसे अमेरिका की कीमत पर फायदा उठाने का मौका देता है जिसने जगह-जगह पैर फंसा रखे हैं।

यह युद्ध अमेरिका को एक अस्थिर करने वाली ताकत के तौर पर पेश करने के चीनी नैरेटिव को भी मजबूत करता है, जिससे इस क्षेत्र और इसके बाहर के उन देशों के बीच उसकी अपील बढ़ती है जो पश्चिमी दबदबे का कोई विकल्प तलाश रहे हैं। इस लिहाज से, ईरान का यह टकराव महज एक क्षेत्रीय संकट नहीं, बल्कि एक ऐसे वैश्विक रणनीतिक बदलाव की शुरुआत है जो सत्ता के संतुलन को बीजिंग के पक्ष में और झुका देगा।

> गठबंधनों में और ज्यादा तनाव पैदा करने एवं संकट के समय अमेरिकी नेतृत्व की विश्वसनीयता पर सवाल उठाने के अलावा, ईरान संघर्ष ने अमेरिका को पश्चिम एशिया में अपने सैन्य संसाधनों और राजनीतिक ध्यान- दोनों को लगाने के लिए मजबूर कर दिया है

ट्रंप की विदेश नीति का नजरिया इन समीकरणों को और भी ज्यादा बढ़ा देता है। नाटो और क्वाड के भीतर लंबे समय से चले आ रहे गठबंधनों को कमजोर करने की उनकी इच्छा, और एकतरफा कार्रवाई करने की उनकी आदत ने उन साझेदारियों के नेटवर्क को कमजोर कर दिया है, जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से अमेरिकी प्रभाव को बढ़ाया था। साथ ही, चीन को लेकर उनका अस्थिर रवैया- जो कभी टकराव तो कभी समझौते के बीच झूलता रहता है- अमेरिका के इरादों को लेकर अनिश्चितता पैदा करता है। इस तालमेल की कमी से उसकी विश्वसनीयता कमजोर होती है और अमेरिकी नीति की प्रभावशीलता घट जाती है।

दशकों तक, अमेरिका ने खुद को (भले असलियत कुछ और हो) शासन के एक आदर्श और नियम आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के रक्षक के तौर पर पेश किया। अब वह दावा पूरी तरह तार-तार हो चुका है। ईरान युद्ध, जिसे बड़े पैमाने पर एकतरफा आक्रामकता माना गया, ने अमेरिकी इरादों को लेकर संदेह को और गहरा कर दिया है। जैसे-जैसे यह धारणा फैलती जाएगी, यह अमेरिकी नेतृत्व को और कमजोर करेगी और एक वैकल्पिक वैश्विक व्यवस्था की ओर चीन के प्रयासों को मजबूती देगी। चीन के लिए, ट्रंप की ये गलतियां अपने प्रभाव का विस्तार करने का एक आसान जरिया हैं, जिसके लिए उसे अमेरिका से सीधे तौर पर टकराने की भी जरूरत भी नहीं पड़ी।

ट्रंप के वफादार लोग तर्क देते हैं कि उनकी विघटनकारी नीतियां एक अन्यायपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का सामना करने और चीन के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए जरूरी हैं। उनका कहना है कि पिछली रणनीतियां व्यापार और प्रौद्योगिकी में मौजूद ढांचागत असंतुलन को दूर करने में नाकाम रही थीं। ये चिंताएं पूरी तरह बेबुनियाद नहीं हैं, लेकिन ट्रंप की विदेश नीति का विरोधाभास इसके अनचाहे नतीजों में छिपा है। उस वैचारिक ढांचे को छोड़ देने से, जिसने कभी अमेरिकी शक्ति को वैधता प्रदान की थी, यह नीति उसी शक्ति को कमजोर कर देती है। विस्तारवादी कार्रवाइयों और महंगे संघर्षों में उलझकर, यह रणनीतिक रूप से अपनी क्षमता से ज्यादा खिंच जाने की प्रक्रिया को तेज कर देती है। लंबी अवधि की स्थिरता के बजाय छोटी अवधि के प्रभुत्व पर ध्यान केंद्रित करके, यह ऐसी परिस्थितियां पैदा कर देती है जो उसी प्रतिद्वंद्वी के पक्ष में जाती हैं जिसे यह नियंत्रित करना चाहती है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

एआई, जलवायु परिवर्तन और युद्ध का त्रिविध वार

...हमारी पृथ्वी को जलवायु-प्रलय की ओर धकेल रहा है

अभय शुक्ला

फोटो: गेटी इमेजेज

गाजा के ममदानी अस्पताल पर इसराइली बमबारी में मारे गए अपने बच्चे को ले जाती महिला

इस दौर की सबसे अफसोसनाक बात है कि आज सत्ता की वैश्विक बागडोर ऐसे नरसंहारी हत्यारों, यौन अपराधियों, सत्ता के नशे में चूर सिरफिरों, युद्ध-अपराधियों और लालची अरबपतियों के हाथों में है, जिन्हें असल में तो जेल में होना चाहिए। सामूहिक रूप से, ये मनोरोगी मानव जाति को सातवें बड़े सामूहिक विनाश के कगार की ओर धकेले जा रहे हैं और इस बार यह विनाश समस्त 'होमो सेपियन्स' का होगा। ग्रह के दृष्टिकोण से शायद यह अच्छी ही बात है, क्योंकि हम इस अद्भुत ग्रह के कतई हकदार नहीं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई), जलवायु परिवर्तन, या युद्ध- इनमें से हर में हमारा नामो-निशान मिटाने की क्षमता है। लेकिन मामला इतना ही नहीं। पिछले तीन सालों ने साबित कर दिया है कि ऊपर वर्णित समाजविरोधी शख्सियतों के मार्गदर्शन में ये तीनों अब एकजुट होकर इस काम को अंजाम देने में लग गए हैं।

जैसे-जैसे हम यूक्रेन और मध्य-पूर्व में युद्ध से होने वाले विनाश की ओर बढ़ते जा रहे हैं, यह तीन-तरफा तालमेल और भी ज्यादा घातक और स्पष्ट होता जा रहा है। एआई का इस्तेमाल नेताओं, सेना प्रमुखों और वैज्ञानिकों की हत्या करने, एक-दूसरे पर निगरानी रखने, मिसाइलों और बमों को रास्ता दिखाने, और यहां तक कि युद्ध को पूरी तरह स्वचालित बनाने के लिए किया जा रहा है।

'दुश्मनों' का भविष्य अब एल्गोरिदम तय कर रहे हैं। युद्ध के लिए एआई के इस इस्तेमाल का खुलासा एन्थ्रोपिक और पेंटागन की खींचतान में हुआ, जब पेंटागन ने उन सुरक्षा-नियमों को मानने से इनकार कर दिया, जिन्हें एन्थ्रोपिक ने अपने एल्गोरिदम में उनके गलत इस्तेमाल को रोकने के लिए डाला था। नैतिक रुख अपनाने के कारण एन्थ्रोपिक को ब्लैकलिस्ट कर दिया गया, लेकिन ओपन एआई और अन्य कंपनियों ने तुरंत उसकी जगह ले ली। एआई अब पारंपरिक या गैर-परमाणु युद्धों को भी इस तकनीक से लैस देशों के लिए ज्यादा घातक और सुविधाजनक/स्वीकार्य बना रहा है।

इस एआई का इस्तेमाल लुटेरों और आपराधिक गिरोहों द्वारा भी किया जा रहा है जो खुद को 'स्वयंभू सरकार' बताते हैं और वे इसके जरिये अवैध युद्ध छेड़ रहे हैं। ऐसा करके वे प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट कर ही रहे हैं, ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ा रहे हैं, और दर्जनों देशों की मिट्टी और पानी को प्रदूषित कर रहे हैं जिससे हम 'जलवायु-प्रलय' के करीब पहुंचते जा रहे हैं। अफसोस की बात है कि कोई भी उस पर्यावरणीय तबाही के बारे में बात नहीं कर रहा जो लगातार बड़े होते दायरों में फैलती जा रही है; सबकी नजरें केवल मिसाइलों, ड्रोनों, विमान वाहक पोतों और होर्मुज जलडमरूमध्य पर टिकी हुई हैं।

एक अध्ययन से पता चला है कि रूस-यूक्रेन युद्ध के तीन सालों में, बमबारी, धमाकों और आग लगने से वातावरण में 35 करोड़ टन अतिरिक्त प्रदूषक/ग्रीन हाउस गैस/कार्बन डाइऑक्साइड छोड़े गए हैं, जो सालाना वैश्विक उत्सर्जन का 1% है। 2023 में रूस द्वारा यूक्रेन के खेरसन इलाके में काखोव्का बांध को तबाह करने से, बांध के निचले हिस्से का 600 वर्ग किलोमीटर से ज्यादा इलाका डूब गया। इससे व्यापक मानवीय और पर्यावरणीय तबाही मचीः 83,000 टन से ज्यादा गाद, जिसमें भारी धातुएं (सीसा, कैडमियम, निकेल) मिली हुई थीं, निचले इलाके में जमा हो गई, जिससे वहां की मिट्टी और पानी दशकों के लिए जहरीले और दूषित हो गए।

गाजा पट्टी के पूरे 365 वर्ग किलोमीटर इलाके पर इसराइल ने ऐसी भयानक बमबारी की है कि अब वहां कोई भी खेत या हरा-भरा इलाका नहीं बचा। इसकी जमीन और शहरों में हजारों ऐसे बम दबे पड़े हैं जो फटे नहीं। गाजा की 80% इमारतें तबाह हो चुकी हैं, और यूएन के अनुमान के मुताबिक, इससे 6.3 करोड़ टन मलबा जमा हो गया है। अगर रोजाना 200 ट्रक मलबा हटाएं, तो भी इसे साफ करने में 15 साल लग जाएंगे! इसकी लागत एक अरब अमेरिकी डॉलर से भी ज्यादा होगी। असल में, पूरा 365 वर्ग किलोमीटर का इलाका अब एक बंजर जमीन में बदल चुका है।

ईरान के खिलाफ अमेरिकी/इसराइली युद्ध का पर्यावरण पर असर जमीन और समुद्र, दोनों के लिए बहुत बुरा होने जा रहा है; खास तौर पर अब जब तेल संयंत्र सभी पक्षों के लिए हमले का आसान निशाना बन गए हैं। इसराइल ने मार्च के दूसरे हफ्ते में तेहरान के तेल के टैंकों पर बमबारी करके पर्यावरण युद्ध के नए दौर की शुरुआत की थीः इसके कारण काले धुएं के विशाल बादल उठे और कई दिनों तक आसमान में छाए रहे।

> दुनिया के तमाम नेतन्याहू, पुतिन और ट्रंप-जैसे लोग न केवल अवैध युद्ध छेड़ रहे हैं और मानवीय संधियों को ताक पर रख रहे हैं, बल्कि वे भयानक पैमाने पर पर्यावरण-विनाश भी कर रहे हैं

इससे भी बुरी थी वह 'काली बारिश', जिसमें हवा में घुले सभी प्रदूषक तत्व मौजूद थे। ये प्रदूषक अब रिसकर मिट्टी में समा गए हैं, जिससे मिट्टी दशकों तक जहरीली और बंजर बनी रहेगी, और भूजल भी दूषित हो जाएगा। 18 मार्च को ईरान के 'पार्स गैस फील्ड' पर इसराइल का हमला, पूरे क्षेत्र में एक 'पर्यावरणीय नरसंहार' की शुरुआत है; इस फील्ड में हर दिन 60 करोड़ क्यूबिक मीटर प्राकृतिक गैस का प्रसंस्करण होता है। इतनी विशाल मात्रा में गैस में आग लगने से निकलने वाला जहरीला धुआं न केवल ईरान, बल्कि पूरे खाड़ी क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लेगा, और यह पाकिस्तान व भारत तक को अपनी जद में ले सकता है।

ईरान द्वारा इसराइल और खाड़ी देशों के तेल क्षेत्रों पर बमबारी करके की जाने वाली अनिवार्य जवाबी कार्रवाई इस प्रदूषण को कई गुना बढ़ा देगी। यह सोचकर भी रूह कांप उठती है कि इन सब से वातावरण में कितने ज्यादा प्रदूषक घनीभूत हो जाएंगे। फारस की खाड़ी में चल रहे जहाजों- चाहे वे सैन्य हों या नागरिक- में करोड़ों लीटर/बैरल तेल भरा हुआ है, और ये सभी युद्ध के खतरे की जद में हैं। इस समय अकेले होर्मुज जलडमरूमध्य में ही 300 जहाजों में 1 करोड़ 30 लाख बैरल से ज्यादा तेल और 5 लाख टन गैस फंसी हुई है। अगर उनमें से आधे दर्जन भी डूब जाते हैं, तो खाड़ी का पानी दशकों तक दूषित रहेगा और सारा समुद्री जीवन नष्ट हो जाएगा। क्या हम भूल गए हैं कि इराक युद्ध के दौरान क्या हुआ था, जब सद्दाम हुसैन ने समुद्र में लाखों लीटर तेल बहा दिया था? 26 साल बीत जाने के बाद भी, वह समुद्री क्षेत्र अब तक पूरी तरह उबर नहीं सका है।

'द गार्डियन' में छपे एक हालिया अध्ययन से पता चलता है कि मौजूदा युद्ध के पहले 14 दिनों में 50 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन हुआ है। यह उत्सर्जन तबाह हुई इमारतों (24 लाख टन), सैन्य वाहनों के ईंधन (5,29,000 टन), तेल ठिकानों पर बमबारी (18.8 लाख टन), तबाह हुए सैन्य साजो-सामान (1,72,000 टन) और गोला-बारूद (55,000 टन) की वजह से हुआ है। यह दुनिया के उन 84 देशों के सालाना कार्बन बजट के बराबर है, जो सबसे कम कार्बन उत्सर्जन करते हैं।

नेतन्याहू, पुतिन और ट्रंप जैसे लोग न सिर्फ गैर-कानूनी युद्ध लड़ रहे हैं और मानवीय समझौतों की धज्जियां उड़ा रहे हैं, बल्कि वे भयानक पैमाने का पर्यावरण विनाश भी कर रहे हैं। यह एक और बात का संकेत है कि जीवाश्म-ईंधन आधारित भू-राजनीति, रहने लायक ग्रह के साथ मेल नहीं खाती। शिकागो यूनिवर्सिटी में लगी 'डूम्सडे क्लॉक' (कयामत की घड़ी)- जिसे इस तरह सेट किया गया है कि आधी रात का मतलब पूरी तरह से प्रलय होता है- अब उस समय के और भी करीब पहुंचती जा रही है। 1991 में यह आधी रात से 17 मिनट पहले थी, आज यह आधी रात से सिर्फ 85 सेकंड पहले है। दुनिया के पास समय तेजी से खत्म हो रहा है, और यह सिर्फ एक रूपक नहीं। ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं। यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

सरकार के खिलाफ बढ़ता जन असंतोष असम चाहता है बदलाव

Photo: GettyImages

असम में असंतोष की एक मजबूत लहर साफ दिखाई देने लगी है। मौजूदा सरकार ने निर्णायक शासन के नाम पर जनता से धोखा किया है । असम सरकार पर आज बड़े पैमाने पर सवाल उठ रहे हैं। राज्य की बड़ी आबादी का मानना है कि मौजूदा सरकार के कई अहम फैसलों ने समावेशी विकास देने के बजाय समाज में विभाजन को और गहरा किया है। ग्रामीण इलाकों से लेकर शहरी केंद्रों तक अब चर्चा का केंद्र यह है कि शासन में निष्पक्षता, पारदर्शिता और राज्य की दिशा आखिर क्या है।

इस बढ़ते असंतोष के केंद्र में विभिन्न जिलों में चलाए गए विवादित बेदखली अभियान हैं। राज्य सरकार लगातार यह कहती रही है कि इन अभियानों का उद्देश्य सरकारी जमीन को अतिक्रमण से मुक्त कराना है। लेकिन इन अभियानों का पैमाना, समय और तरीका लगातार आलोचना के घेरे में रहा है। विपक्षी दलों, सामाजिक संगठनों और प्रभावित समुदायों ने इन पर गंभीर सवाल उठाए हैं।

इन अभियानों के चलते हजारों परिवारों के विस्थापित होने की खबरें सामने आई हैं, जिनमें बड़ी संख्या आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की है। नदी किनारे और चार क्षेत्रों में रहने वाले लोग, जो पहले ही कटाव और बुनियादी सुविधाओं की कमी जैसी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। इन लोगों के लिए बेदखली केवल जमीन खोने का मामला नहीं है, बल्कि उनके घर, आजीविका और शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाओं से भी वंचित होने का सवाल है।

आलोचकों का कहना है कि मुद्दा केवल जमीन खाली कराने का नहीं, बल्कि उस नीति को लागू करने के तरीके का है। बार-बार यह आरोप सामने आए हैं कि कार्रवाई में चयनात्मकता रही है और उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। इससे यह आशंका गहराती है कि क्या ये कदम प्रशासनिक जरूरतों के तहत उठाए गए हैं या इनके पीछे राजनीतिक कारण भी हैं। पुनर्वास की पर्याप्त व्यवस्था न होने से स्थिति और गंभीर हो गई है और विस्थापित परिवार अनिश्चितता और असुरक्षा में जीवन जीने को मजबूर हैं।

असम कांग्रेस के नेताओं ने इस मुद्दे पर खुलकर अपनी बात रखी है। उनका कहना है कि बेदखली की नीति मानवीय होनी चाहिए और संविधानिक प्रावधानों के अनुरूप होनी चाहिए। उनका मानना है कि भूमि प्रबंधन जरूरी है, लेकिन यह मानवीय गरिमा की कीमत पर नहीं हो सकता। "बेदखली एक तमाशा नहीं बन सकती, शासन का मतलब न्याय होना चाहिए, दिखावा नहीं," यह भावना राज्य कांग्रेस नेतृत्व, विशेषकर गौरव गोगोई द्वारा लगातार व्यक्त की गई है।

विवाद को और गहराने वाला एक और मुद्दा है—जमीन आवंटन को लेकर उठे सवाल। आरोप हैं कि विकास के नाम पर बड़ी मात्रा में जमीन कॉरपोरेट संस्थाओं को दी गई है। 40,000 बीघा से अधिक जमीन औद्योगिक और वाणिज्यिक परियोजनाओं के लिए आवंटित किए जाने की रिपोर्टों ने सरकार की प्राथमिकताओं पर सवाल खड़े किए हैं। विपक्ष का कहना है कि एक तरफ सरकार जमीन की कमी का हवाला देकर गरीबों को बेदखल करती है, वहीं दूसरी ओर बड़े निजी खिलाड़ियों को जमीन देने में उदारता दिखाती है, जिससे दोहरे मानदंड की धारणा बनती है।

यह बहस अब केवल जमीन तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि पहचान, अधिकार और असम के विविध समाज के भविष्य से जुड़ गई है। नागरिक संगठनों ने इन नीतियों के सामाजिक और मानवीय प्रभावों पर चिंता जताई है और चेतावनी दी है कि इससे पहले से संवेदनशील सामाजिक ढांचे में और दरारें आ सकती हैं।

> आरोप हैं कि विकास के नाम पर बड़ी मात्रा में जमीन कॉरपोरेट संस्थाओं को दी गई है। 40,000 बीघा से अधिक जमीन औद्योगिक और वाणिज्यिक परियोजनाओं के लिए आवंटित किए जाने की रिपोर्टों ने सरकार की प्राथमिकताओं पर सवाल खड़े किए हैं। विपक्ष का कहना है कि एक तरफ सरकार जमीन की कमी का हवाला देकर गरीबों को बेदखल करती है, वहीं दूसरी ओर बड़े निजी खिलाड़ियों को जमीन देने में उदारता दिखाती है, जिससे दोहरे मानदंड की धारणा बनती है।

दूसरी ओर, मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा के नेतृत्व वाली सरकार ने अपने कदमों का बचाव करते हुए कहा है कि सभी कार्रवाई कानूनी दायरे में और राज्य के विकास के लिए आवश्यक हैं। सरकार का कहना है कि कानून व्यवस्था बनाए रखना और निवेश आधारित विकास को आगे बढ़ाना जरूरी है।

हालांकि, राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि चुनावों में धारणा बहुत मायने रखती है। यह बढ़ती धारणा कि सरकार के फैसले दीर्घकालिक योजना के बजाय केवल दिखावे पर आधारित हैं, मतदाताओं के रुख को प्रभावित कर सकती है, खासकर ग्रामीण और वंचित वर्गों में।

कांग्रेस और उसके सहयोगी इस असंतोष को बदलाव के व्यापक नैरेटिव में बदलने की कोशिश कर रहे हैं। वे खुद को समावेशी विकास के पक्षधर के रूप में पेश कर रहे हैं और ऐसी नीतियों का वादा कर रहे हैं जो विकास के साथ सामाजिक न्याय का संतुलन बनाए रखें। उनका जोर इस बात पर है कि किसी भी बेदखली नीति के साथ उचित पुनर्वास, कानूनी सुरक्षा और पारदर्शिता सुनिश्चित की जाए।

जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आ रहे हैं, एक मूलभूत सवाल और मजबूत हो रहा है—क्या ऐसा विकास सार्थक कहा जा सकता है, जो उन्हीं लोगों को बाहर कर दे जिनके लिए वह किया जा रहा है? असम के कई मतदाताओं के लिए इसी सवाल का जवाब उनके वोट का फैसला तय करेगा।

आश्वासन और अनिश्चितता से जूझ रहा अनुसूचित जनजाति समुदाय

Photo: GettyImages

चुतिया, कोच-राजबोंग्शी, मटक, मोरान, ताई अहोम और चाय जनजाति जैसे समुदाय लगातार यह दावा करते रहे हैं कि वे एसटी दर्जे के लिए जरूरी सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक मानकों को पूरा करते हैं। उनके लिए यह मांग केवल पहचान का मुद्दा नहीं है, बल्कि शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में अवसरों से सीधा जुड़ा हुआ है।

असम में कई समुदायों द्वारा अनुसूचित जनजाति (एसटी) का दर्जा दिए जाने की मांग एक बार फिर बड़ा राजनीतिक मुद्दा बनकर उभरी है। यह मुद्दा लंबे समय से चली आ रही आकांक्षाओं और एक विविध समाज में नीति निर्माण की जटिलताओं दोनों को दर्शाता है। दशकों की चर्चाओं, समितियों की रिपोर्टों और राजनीतिक आश्वासनों के बावजूद यह मामला अभी तक सुलझ नहीं पाया है, जिससे संबंधित समुदायों में निराशा और अविश्वास बढ़ता जा रहा है।

चुतिया, कोच-राजबोंग्शी, मटक, मोरान, ताई अहोम और चाय जनजाति जैसे समुदाय लगातार यह दावा करते रहे हैं कि वे एसटी दर्जे के लिए जरूरी सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक मानकों को पूरा करते हैं। उनके लिए यह मांग केवल पहचान का मुद्दा नहीं है, बल्कि शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में अवसरों से सीधा जुड़ा हुआ है।

वर्षों से विभिन्न सरकारों ने इन मांगों को स्वीकार किया और समाधान का आश्वासन भी दिया, लेकिन प्रगति धीमी और असंगत रही। वर्तमान सरकार से विशेष उम्मीदें थीं क्योंकि बार-बार यह कहा गया कि इस मुद्दे का समाधान सक्रिय रूप से निकाला जाएगा।

इसके बावजूद, यह मुद्दा अब भी अनिश्चितता में लटका हुआ है। समितियां बनीं, चर्चाएं हुईं, लेकिन अंतिम निर्णय की दिशा में ठोस प्रगति दिखाई नहीं दी। इससे समुदायों में असंतोष बढ़ा है और कई संगठनों ने फिर से आंदोलन तेज कर दिया है, यह महसूस करते हुए कि उनकी मांगों को फिर नजरअंदाज किया जा रहा है।

इस मुद्दे के समाधान में एक बड़ी चुनौती विभिन्न हितों के बीच संतुलन बनाना है। पहले से एसटी दर्जा प्राप्त समुदायों ने चिंता जताई है कि नए समुदायों को शामिल करने से उनके लाभ कम हो सकते हैं। इससे सहमति बनाना एक जटिल और संवेदनशील प्रक्रिया बन गई है, जिसके लिए व्यापक संवाद और पारदर्शिता जरूरी है। आलोचकों का कहना है कि सरकार इस दिशा में विश्वसनीय और समावेशी तंत्र बनाने में विफल रही है। स्पष्ट रोडमैप की कमी ने अनिश्चितता को और बढ़ा दिया है और विभिन्न पक्षों के बीच मतभेद गहराते गए हैं।

यह बयान कि चुनाव से पहले एसटी दर्जा नहीं दिया जाएगा, इस बहस को और तेज कर गया है। कई समुदायों ने इसे इस संकेत के रूप में देखा कि मुद्दे को हल करने के बजाय टाला जा रहा है, जिससे निराशा की भावना और गहरी हुई है। एसटी दर्जा देने की प्रक्रिया कई स्तरों की जांच से गुजरती है, जिसमें सामाजिक-आर्थिक अध्ययन, कानूनी मान्यता और अंततः संसद की मंजूरी शामिल है। कांग्रेस ने दोहराया है कि इस प्रक्रिया को निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

इन समुदायों के लिए देरी के ठोस परिणाम हैं। एसटी दर्जा न होने के कारण वे आरक्षण के लाभों से वंचित रहते हैं, जिससे उनकी सामाजिक-आर्थिक प्रगति प्रभावित होती है। खासकर युवाओं के लिए यह अनिश्चितता शिक्षा और रोजगार के अवसरों को सीमित करती है।

कांग्रेस ने खुद को संवाद और सहमति बनाने वाले मंच के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने एक समयबद्ध और संरचित प्रक्रिया का प्रस्ताव दिया है, जिसमें कानूनी विशेषज्ञों, जनसंख्या विशेषज्ञों और सभी संबंधित समुदायों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाए। इसका उद्देश्य एक ऐसा समाधान तैयार करना है जो पारदर्शी, समावेशी और कानूनी रूप से मजबूत हो।

कांग्रेस नेताओं का कहना है कि इस मुद्दे को केवल चुनावी वादों या तात्कालिक घोषणाओं से हल नहीं किया जा सकता। इसके लिए लगातार संवाद और संतुलित दृष्टिकोण की जरूरत है। "समाधान ऐसा होना चाहिए जो निष्पक्ष हो, कानूनी रूप से टिकाऊ हो और सभी पक्षों को स्वीकार्य हो," यह पार्टी का स्पष्ट रुख रहा है।

सरकार अपनी ओर से जटिलताओं का हवाला देती रही है और कहती है कि प्रयास जारी हैं। लेकिन असम में कई लोगों के लिए अब इंतजार लंबा हो गया है। बार-बार के वादों और देरी ने भरोसे को कमजोर कर दिया है, जिससे यह मुद्दा राजनीतिक विश्वसनीयता की परीक्षा बन गया है।

जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आ रहे हैं, एसटी दर्जा का मुद्दा सार्वजनिक विमर्श के केंद्र में बना रहेगा। मतदाता न केवल वादों को, बल्कि उनके पीछे की नीयत और स्पष्टता को भी परखेंगे। एक ऐसे राज्य में जहां पहचान और अवसर गहराई से जुड़े हैं, इस बहस का परिणाम दूरगामी असर डाल सकता है।

कुशासन की भेंट चढ़े शिक्षा, भ्रष्टाचार और क्षेत्रीय संतुलन

जहां एक ओर पहचान और जमीन से जुड़े मुद्दे सुर्खियों में हैं, वहीं असम का चुनाव शासन की गुणवत्ता पर भी एक बड़ा जनमत संग्रह बनता जा रहा है। शिक्षा, भ्रष्टाचार और क्षेत्रीय असंतुलन से जुड़े सवाल तेजी से जनमत को प्रभावित कर रहे हैं, खासकर युवाओं, मध्यम वर्ग और ग्रामीण समाज में।

शिक्षा क्षेत्र एक बड़ी चिंता के रूप में उभरा है। सरकारी स्कूलों के बंद होने, विलय होने या संसाधनों की कमी से जूझने की खबरों ने अभिभावकों और शिक्षकों के बीच चिंता बढ़ा दी है। ग्रामीण इलाकों में सरकारी स्कूल ही बच्चों के लिए मुख्य, बल्कि कई बार एकमात्र विकल्प होते हैं। ऐसे में इनके संचालन में किसी भी प्रकार की बाधा सीधे नामांकन, उपस्थिति और सीखने के स्तर को प्रभावित करती है।

कांग्रेस नेताओं का आरोप है कि सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करने के बजाय वर्तमान नीति ने इसे कमजोर किया है। उनका कहना है कि बुनियादी ढांचे में कमी, शिक्षकों की कमी और प्रशासनिक समस्याओं ने मिलकर शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित किया है। इसके दीर्घकालिक परिणाम गंभीर हो सकते हैं, जो राज्य की मानव संसाधन क्षमता और आर्थिक भविष्य को प्रभावित करेंगे।

"युवाओं को अवसर चाहिए और शिक्षा उन अवसरों की नींव है," यह कांग्रेस के संदेश का प्रमुख हिस्सा रहा है। गौरव गोगोई जैसे नेताओं ने बेहतर बुनियादी ढांचा, शिक्षक भर्ती और आधुनिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर जोर दिया है।

भ्रष्टाचार भी एक अहम मुद्दा बना हुआ है। कांग्रेस ने लगातार पारदर्शिता और जवाबदेही को लेकर सवाल उठाए हैं और आरोप लगाया है कि मौजूदा सरकार साफ-सुथरे शासन के मानकों पर खरी नहीं उतरी है। अनियमितताओं और चयनात्मक कार्रवाई के आरोपों के जरिए यह तर्क दिया जा रहा है कि व्यवस्था में स्थिरता और निष्पक्षता की कमी है।

राजनीतिक परिदृश्य में दल-बदल भी चर्चा का विषय बना हुआ है। आलोचक बताते हैं कि कांग्रेस से जुड़े कई नेता अब भाजपा सरकार में प्रभावशाली पदों पर हैं। इससे यह सवाल उठता है कि क्या राजनीतिक बदलाव वास्तव में वैचारिक है या सिर्फ सत्ता के पुनर्गठन का परिणाम है।

कांग्रेस ने इस चुनाव को दो अलग-अलग दृष्टिकोणों के बीच की लड़ाई के रूप में पेश किया है। एक ओर वह मॉडल है जिसे पूर्व मुख्यमंत्री तरुण गोगोई के समय का समावेशी और कल्याणकारी शासन कहा जाता है, और दूसरी ओर मौजूदा मॉडल है जिसे केंद्रीकरण, ध्रुवीकरण और दिखावटी विकास पर आधारित बताया जा रहा है।

क्षेत्रीय असंतुलन भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। सरकार ने जहां गुवाहाटी और आसपास के क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे के विकास को प्रमुखता से दिखाया है, वहीं कई अन्य क्षेत्र खुद को उपेक्षित महसूस करते हैं। अपर असम, बराक घाटी और दूरदराज के जिलों में निवेश, कनेक्टिविटी और सार्वजनिक सेवाओं की कमी को लेकर लगातार आवाज उठ रही है।

इस असंतुलन ने विकेंद्रीकृत विकास की मांग को मजबूत किया है, जहां संसाधनों और अवसरों का समान वितरण हो। स्थानीय समुदाय अब ऐसी नीतियों की मांग कर रहे हैं जो उनकी विशिष्ट जरूरतों को ध्यान में रखें, न कि एक समान ढांचे में सब पर लागू की जाएं।

मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा के नेतृत्व वाली सरकार बुनियादी ढांचे, निवेश और प्रशासनिक सुधारों के दावे कर रही है, लेकिन कांग्रेस का कहना है कि ये दावे वास्तविकता से मेल नहीं खाते और कई मामलों में बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए गए हैं। कांग्रेस का तर्क है कि विकास को केवल बड़े प्रोजेक्ट्स से नहीं, बल्कि आम लोगों के जीवन में सुधार—बेहतर स्कूल, सुलभ स्वास्थ्य सेवाएं, रोजगार के अवसर और सामाजिक सौहार्द—से मापा जाना चाहिए।

जैसे-जैसे चुनावी अभियान तेज हो रहा है, कांग्रेस और उसके सहयोगी खुद को एक मजबूत विकल्प के रूप में पेश कर रहे हैं। उनका फोकस भ्रष्टाचार मुक्त शासन, समावेशी नीतियों और संतुलित क्षेत्रीय विकास पर है। वे मतदाताओं में बढ़ती बदलाव की भावना को अपने पक्ष में करने की कोशिश कर रहे हैं।

असम के मतदाताओं में सरकार बदलने की भावना तेजी से उभर रही है और वे निरंतरता के बजाय सुधार की दिशा में कदम बढ़ाने के पक्ष में दिखाई दे रहे हैं। यह चुनाव न केवल राज्य की राजनीतिक दिशा तय करेगा, बल्कि आने वाले वर्षों में उसके विकास की दिशा भी निर्धारित

Photo: GettyImages

संडे नवजीवन
रविवार, 05अप्रैल, 2026 ।www.navjivanindia.com

पश्चिम एशिया संकट

LPG की कतारों में दिखा भाजपा का कुप्रबंधन

Photo: GettyImages

पश्चिम एशिया में गहराता संकट अब दूर की भू-राजनीतिक चिंता नहीं रह गया है, बल्कि इसका सीधा असर भारत की अर्थव्यवस्था और आम लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी पर पड़ रहा है। कांग्रेस पार्टी ने इस मुद्दे को जोरदार तरीके से उठाते हुए केंद्र सरकार पर हालात को संभालने में कुप्रबंधन का आरोप लगाया है और चेतावनी दी है कि इसके प्रभाव असम जैसे राज्यों में साफ दिखाई दे रहे हैं, जहां महंगाई, ईंधन की कमी और आर्थिक दबाव लगातार बढ़ रहा है। कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने आगाह किया है कि हालात तेजी से महंगाई के बड़े संकट की ओर बढ़ रहे हैं।

राहुल गांधी ने रुपये की गिरती कीमत और औद्योगिक ईंधन की बढ़ती लागत को लेकर गंभीर चिंता जताई है और इसे वैश्विक अस्थिरता व घरेलू नीतिगत विफलताओं से जोड़ा है। उन्होंने कहा, “रुपया डॉलर के मुकाबले 100 के करीब पहुंच रहा है और औद्योगिक ईंधन की कीमतों में तेज बढ़ोतरी सिर्फ आंकड़े नहीं, बल्कि आने वाली महंगाई का साफ संकेत हैं।” यह बयान ऐसे समय में आया है जब पश्चिम एशिया में तनाव के कारण वैश्विक सप्लाई चेन प्रभावित हुई है, खासकर कच्चे तेल की उपलब्धता और कीमत पर, जो भारत जैसे आयात-निर्भर देश के लिए बेहद अहम है।

कांग्रेस ने जिस सबसे बड़ी चिंता को उठाया है, वह एलपीजी की संभावित कमी है, जिसका असर परिवहन, उद्योग और घरेलू उपभोग पर पड़ेगा। सप्लाई में रुकावट और आयात लागत बढ़ने से असम जैसे राज्यों में ईंधन के दाम

> **भाजपा सरकारों पर निशाना साधते हुए कांग्रेस ने कहा है कि उनके पास इस आर्थिक संकट से निपटने की कोई स्पष्ट रणनीति नहीं है। राहुल गांधी ने कहा, “सरकार के पास न दिशा है, न योजना, सिर्फ भाषण हैं। सवाल यह नहीं कि सरकार क्या कह रही है, बल्कि यह है कि आपकी थाली में क्या बचा है।” यह बात असम में खास तौर पर गूंज रही है, जहां विकास के दावों के बीच महंगाई और आर्थिक संकट पर सवाल उठ रहे हैं।**

लगातार बढ़ रहे हैं, जिससे जरूरी सामानों की कीमतों में भी तेजी आई है। असम में जहां सामान की ढुलाई मुख्य रूप से सड़क परिवहन पर निर्भर है, वहां ईंधन की मामूली बढ़ोतरी भी खाने-पीने की चीजों और रोजमर्रा के खर्चों को सीधे प्रभावित करती है।

पहले से आर्थिक चुनौतियों से जूझ रहा असम इस स्थिति से ज्यादा प्रभावित हो रहा है। चाय बागान मजदूर, छोटे व्यापारी और दिहाड़ी मजदूर सबसे ज्यादा दबाव में हैं, क्योंकि उनकी आय स्थिर है जबकि खर्च लगातार बढ़ रहे हैं। राज्यभर से मिल रही रिपोर्ट बताती हैं कि चावल, दाल, खाद्य तेल और सब्जियों जैसी जरूरी वस्तुओं की कीमतों में हाल के महीनों में स्पष्ट बढ़ोतरी हुई है। कई परिवारों के लिए महीने का बजट संभालना मुश्किल होता जा रहा है।

राहुल गांधी ने इस संकट के व्यापक आर्थिक असर को रेखांकित करते हुए कहा, “उत्पादन और परिवहन महंगे होंगे, एमएसएमई सेक्टर पर सबसे ज्यादा असर पड़ेगा, रोजमर्रा के सामान महंगे होंगे और विदेशी निवेश तेजी से बाहर जाएगा, जिससे शेयर बाजार पर दबाव बढ़ेगा।” उनका यह बयान बताता है कि अगर वैश्विक संकट को सही तरीके से नहीं संभाला गया, तो इसका असर पूरे देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ सकता है।

असम में एमएसएमई सेक्टर, जो रोजगार का बड़ा स्रोत है, पहले से दबाव में है। ईंधन और कच्चे माल की लागत बढ़ने से छोटे कारोबारियों का मुनाफा घट रहा है, जिससे कई लोग या तो कारोबार कम कर रहे हैं या फिर बढ़ा हुआ बोझ उपभोक्ताओं पर डाल रहे हैं। इसका सीधा असर रोजगार पर पड़ रहा है और युवाओं के लिए अवसर कम हो रहे हैं।

ग्रामीण असम में भी हालात चिंताजनक हैं, जहां किसानों को सिंचाई, परिवहन और उर्वरक की बढ़ती लागत का सामना करना पड़ रहा है। पहले से दबाव में चल रही कृषि आय पर यह अतिरिक्त बोझ किसानों को आर्थिक अनिश्चितता की ओर धकेल रहा है। कांग्रेस का कहना है कि यह केंद्र और राज्य दोनों सरकारों की विफलता है कि उन्होंने वैश्विक संकट के असर को समय रहते समझकर ठोस कदम नहीं उठाए।

भाजपा सरकारों पर निशाना साधते हुए कांग्रेस ने कहा है कि उनके पास इस आर्थिक संकट से निपटने की कोई स्पष्ट रणनीति नहीं है। राहुल गांधी ने कहा, “सरकार के पास न दिशा है, न योजना, सिर्फ भाषण हैं। सवाल यह नहीं कि सरकार क्या कह रही है, बल्कि यह है कि आपकी थाली में क्या बचा है।” यह बात असम में खास तौर पर गूंज रही है, जहां विकास के दावों के बीच महंगाई और आर्थिक संकट पर सवाल उठ रहे हैं।

कांग्रेस का कहना है कि राज्य सरकार ने कमजोर वर्गों को राहत देने के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाए हैं। बढ़ती कीमतों के बावजूद सब्सिडी, मूल्य नियंत्रण या लक्षित योजनाओं में सीमित हस्तक्षेप देखा गया है। यही वजह है कि यह मुद्दा चुनाव में बड़ा राजनीतिक सवाल बनता जा रहा है और कांग्रेस खुद को आम लोगों की आवाज के रूप में पेश कर रही है।

संकट का एक और पहलू चुनाव के बाद ईंधन की कीमतों में संभावित बढ़ोतरी का है, जिसे राहुल गांधी ने खुलकर उठाया है। उन्होंने चेतावनी दी, “चुनाव के बाद पेट्रोल, डीजल और एलपीजी की कीमतें और बढ़ सकती हैं।” अगर ऐसा होता है, तो पहले से महंगाई झेल रहे परिवारों पर और दबाव बढ़ेगा।

अर्थशास्त्रियों का कहना है कि कमजोर रुपया आयात को महंगा बनाता है, खासकर कच्चे तेल को, जिससे महंगाई बढ़ती है। असम जैसे राज्य में, जहां परिवहन लागत सीधे कीमतों को प्रभावित करती है, यह एक दुष्चक्र पैदा करता है। इसका असर सिर्फ शहरों तक सीमित नहीं, बल्कि गांवों में भी महसूस किया जा रहा है।

कांग्रेस ने वैश्विक संकट, केंद्र की नीतिगत विफलताओं और राज्य के शासन के बीच सीधा संबंध जोड़ते हुए इस मुद्दे को आम लोगों की जिंदगी से जोड़ा है। पार्टी का लक्ष्य राजनीतिक बहस को रोजमर्रा के मुद्दों महंगाई, रोजगार और जीवनयापन पर केंद्रित करना है।

जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आ रहे हैं, असम की जनता के सामने सवाल सिर्फ वादों का नहीं, बल्कि आर्थिक सच्चाई का है। पश्चिम एशिया का संकट भले ही दूर शुरू हुआ हो, लेकिन इसका असर हर घर तक पहुंच चुका है। ऐसे में कांग्रेस का सवाल सीधा है क्या मौजूदा सरकारों के पास इस चुनौती से निपटने की क्षमता और दृष्टि है? असम में कई लोगों के लिए जीवन मुश्किल होता जा रहा है। कांग्रेस के नेतृत्व में एक नई सरकार बदलाव लाने के लिए तैयार है।

दबाव में स्वास्थ्य व्यवस्था

दावों और जमीनी सच्चाई के बीच बड़ा अंतर

असम की स्वास्थ्य व्यवस्था आज एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है, जहां सरकारी दावों और जमीनी हकीकत के बीच बड़ा अंतर साफ नजर आ रहा है। ढांचागत विस्तार और नीतिगत घोषणाओं के बावजूद, खासकर ग्रामीण और दूरदराज इलाकों में लोगों का अनुभव कुछ और ही कहानी बयां करता है।

राज्यभर के सरकारी अस्पताल डॉक्टरों, नर्सों, दवाओं और जांच सुविधाओं की कमी से जूझ रहे हैं। कई प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र ऐसे हैं जहां मामूली इलाज के लिए भी मरीजों को लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। शहर और गांव के बीच स्वास्थ्य सेवाओं का अंतर आज भी गहरा है और इसका सबसे ज्यादा असर ग्रामीण इलाकों पर पड़ रहा है।

आंकड़े स्थिति की गंभीरता को दर्शाते हैं। असम में मातृ मृत्यु दर देश में सबसे अधिक में से एक है, जो करीब 195 प्रति एक लाख जन्म है, जो राष्ट्रीय औसत से लगभग दोगुनी है। शिशु मृत्यु दर और बाल स्वास्थ्य के आंकड़े भी चिंता बढ़ाते हैं, जो स्वास्थ्य सेवाओं में कमी को दिखाते हैं।

स्वास्थ्य कर्मियों की कमी एक बड़ी समस्या है। कई ग्रामीण केंद्रों में विशेषज्ञ डॉक्टर नहीं हैं और जांच सुविधाएं जैसे ब्लड टेस्ट, अल्ट्रासाउंड और इमरजेंसी सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं। इससे मरीजों को निजी अस्पतालों का सहारा लेना पड़ता है, जिससे उनका खर्च बढ़ता है और कई परिवार कर्ज में डूब जाते हैं।

कोविड-19 महामारी ने इन कमजोरियों को उजागर किया था, लेकिन कांग्रेस का आरोप है कि उससे कोई लंबी योजना नहीं बनाई गई। जिला स्तर की स्वास्थ्य व्यवस्था को मजबूत करने के बजाय सिर्फ घोषणाओं पर जोर दिया गया।

मातृ और बाल स्वास्थ्य की स्थिति भी चिंताजनक है। महिलाओं और बच्चों में एनीमिया की समस्या, गर्भावस्था देखभाल की कमी और इलाज में देरी खराब परिणामों की वजह बन रही है। राज्य के आंकड़े बताते हैं कि बड़ी संख्या में बच्चे कुपोषण से जूझ रहे हैं।

कांग्रेस ने भाजपा सरकार पर आरोप लगाया है कि उसने स्वास्थ्य को प्राथमिकता नहीं दी। पार्टी का कहना है कि इतने वर्षों के शासन के बाद भी एक मजबूत, सुलभ और सस्ती स्वास्थ्य व्यवस्था खड़ी नहीं हो पाई है।

कांग्रेस ने अपने रोडमैप में स्वास्थ्य क्षेत्र में बड़े बदलाव का वादा किया है, जिसमें जिला अस्पतालों को मजबूत करना, गांव स्तर पर डॉक्टर और दवाएं उपलब्ध कराना, मुफ्त इलाज का विस्तार और मातृ व बाल स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार शामिल है।

मतदाताओं के सामने सवाल साफ है—क्या मौजूदा व्यवस्था हर नागरिक को बेहतर स्वास्थ्य सेवा दे सकती है या फिर इसमें बड़े बदलाव की जरूरत है?

> **स्वास्थ्य कर्मियों की कमी एक बड़ी समस्या है। कई ग्रामीण केंद्रों में विशेषज्ञ डॉक्टर नहीं हैं और जांच सुविधाएं जैसे ब्लड टेस्ट, अल्ट्रासाउंड और इमरजेंसी सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं। इससे मरीजों को निजी अस्पतालों का सहारा लेना पड़ता है, जिससे उनका खर्च बढ़ता है और कई परिवार कर्ज में डूब जाते हैं।**

Photo: GettyImages

चाय बागान समुदाय: स्वास्थ्य और शिक्षा का संकट

असम के चाय बागान समुदाय, जो राज्य की प्रसिद्ध चाय उद्योग की रीढ़ हैं, आज भी स्वास्थ्य और शिक्षा के गंभीर संकट से जूझ रहे हैं। दशकों से योजनाओं और वादों के बावजूद इनकी स्थिति में बड़ा सुधार नहीं हुआ है, जो व्यवस्था की अनदेखी को दिखाता है। इन समुदायों में स्वास्थ्य स्थिति बेहद खराब है। अध्ययनों के अनुसार लगभग 95 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से पीड़ित हैं, जिसका असर मातृ स्वास्थ्य पर पड़ता है और गर्भावस्था जोखिम भरी हो जाती है। मातृ मृत्यु दर भी इन क्षेत्रों में ज्यादा है। खराब पोषण, समय पर इलाज की कमी और स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता इसके प्रमुख कारण हैं।

शिक्षा की स्थिति भी चिंताजनक है। कई चाय बागान इलाकों में स्कूलों की कमी है और बच्चों के बीच पढ़ाई छोड़ने की दर ज्यादा है। पीढ़ियों से गरीबी और अवसरों की कमी का चक्र जारी है। स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच सीमित है। कई बागानों में अस्पताल नहीं हैं, जिससे मजदूरों को दूर जाना पड़ता है। इलाज में देरी, खासकर प्रसव के समय, कई बार जानलेवा साबित होती है। सरकारी योजनाओं के बावजूद इनका सही क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है। प्रशासनिक खामियां, जागरूकता की कमी और निगरानी की कमजोरी के कारण लाभ लोगों तक नहीं पहुंच पा रहा है। इससे मजदूरों में असंतोष बढ़ रहा है। कांग्रेस का मानना है कि यह एक बड़ा मुद्दा है और इसके लिए विशेष योजना जरूरी है। पार्टी ने मोबाइल हेल्थ यूनिट, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार और मातृ स्वास्थ्य कार्यक्रमों को मजबूत करने का प्रस्ताव दिया है।

शिक्षा के क्षेत्र में आवासीय स्कूल, छात्रवृत्ति और कौशल विकास योजनाओं का वादा किया गया है। साथ ही पोषण योजनाओं के जरिए एनीमिया और कुपोषण से निपटने पर जोर दिया गया है। असम के चाय बागानों की स्थिति यह साफ दिखाती है कि सबसे कमजोर वर्ग आज भी बुनियादी सुविधाओं के लिए संघर्ष कर रहा है। अब बदलाव का समय आ गया है।

> **कांग्रेस का मानना है कि यह एक बड़ा मुद्दा है और इसके लिए विशेष योजना जरूरी है। पार्टी ने मोबाइल हेल्थ यूनिट, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार और मातृ स्वास्थ्य कार्यक्रमों को मजबूत करने का प्रस्ताव दिया है।**

Photo: GettyImages

भारत जोड़ो न्याय यात्रा ने असम में न्याय की आवाज बुलंद की

Photo: GettyImages

असम में राहुल गांधी के नेतृत्व में निकली भारत जोड़ो न्याय यात्रा, देशव्यापी अभियान का सबसे जन-केंद्रित और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली चरण बनकर उभरी। जैसे ही यात्रा असम में दाखिल हुई, इसने अपने मूल संदेश 'न्याय' आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक न्याय को आगे बढ़ाते हुए राज्य की जमीनी हकीकत और शासन से जुड़े मुद्दों को प्रमुखता से उठाया।

जोरहाट से माजुली, लखीमपुर से बारपेटा और आगे धुबरी तक, इस यात्रा को हर वर्ग के लोगों चाय बागान मजदूरों, किसानों, छात्रों, आदिवासी समुदायों और नागरिक संगठनों का जबरदस्त समर्थन मिला। असम में यह यात्रा सिर्फ प्रतीकात्मक नहीं रही, बल्कि यह सीधा संवाद का मंच बनी, जहां लोगों ने अपनी समस्याएं और शासन से अपेक्षाएं खुलकर साझा कीं।

असम चरण के दौरान बार-बार उठाया गया एक प्रमुख मुद्दा भ्रष्टाचार और सत्ता के कथित दुरुपयोग का रहा। कई जनसभाओं को संबोधित करते हुए राहुल गांधी ने राज्य सरकार पर सीधा हमला बोला और इसे "सबसे भ्रष्ट सरकारों में से एक" बताया। उन्होंने आरोप लगाया कि राजनीतिक सत्ता और चुनिंदा कारोबारी हितों के बीच गहरा गठजोड़ है, जिससे असम के संसाधनों का लाभ आम जनता की बजाय कुछ ताकतवर लोगों तक सीमित रह गया है।

> **असम में इस यात्रा के दौरान कई बार इसे रोकने की कोशिशें भी हुईं। जनसभाओं पर रोक से लेकर राहुल गांधी को बटद्रवा थान जाने से रोकने तक, प्रशासन की कार्रवाई बड़ा राजनीतिक मुद्दा बन गई। अनुमति के बावजूद मंदिर में प्रवेश से रोके जाने के विरोध में राहुल गांधी और कार्यकर्ता सड़क पर बैठकर भजन गाने लगे, जिसने लोकतांत्रिक अधिकारों और स्वतंत्रता का मजबूत संदेश दिया।**

यात्रा के दौरान चाय बागान मजदूरों की स्थिति भी प्रमुखता से सामने आई। मजदूरों ने कम वेतन, खराब जीवन स्थितियों और बुनियादी सुविधाओं की कमी की शिकायत की। उनकी बातों ने सरकारी दावों और जमीनी सच्चाई के बीच के अंतर को उजागर किया। इसी तरह किसानों और ग्रामीण समुदायों ने बाढ़, मिट्टी के कटाव और स्थायी समाधान की कमी को लेकर चिंता जताई। माजुली और लखीमपुर में पर्यावरणविदों और स्थानीय प्रतिनिधियों ने कटाव रोकने और आजीविका बचाने के लिए ठोस नीतियों की जरूरत पर जोर दिया।

सामाजिक न्याय का मुद्दा भी इस यात्रा में प्रमुख रहा। मिसिंग और ताई अहोम जैसे आदिवासी समुदायों के प्रतिनिधिमंडलों ने राहुल गांधी से मुलाकात कर अधिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व, सांस्कृतिक पहचान की सुरक्षा और शिक्षा व रोजगार के बेहतर अवसरों की मांग की। स्वायत्त परिषदों को मजबूत करने और शासन में समान भागीदारी सुनिश्चित करने की मांग भी जोरदार तरीके से उठी।

एनआरसी प्रक्रिया और उसके प्रभाव को लेकर भी कई प्रतिनिधिमंडलों ने अपनी चिंताएं साझा कीं। लोगों ने बहिष्कार, कानूनी अनिश्चितता और कठिनाइयों के अनुभव बताए। राहुल गांधी ने उन्हें भरोसा दिलाया कि उनकी आवाज राष्ट्रीय स्तर पर उठाई जाएगी और कांग्रेस हर नागरिक के अधिकार और सम्मान की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है।

असम में इस यात्रा के दौरान कई बार इसे रोकने की कोशिशें भी हुईं। जनसभाओं पर रोक से लेकर राहुल गांधी को बटद्रवा थान जाने से रोकने तक, प्रशासन की कार्रवाई बड़ा राजनीतिक मुद्दा बन गई। अनुमति के बावजूद मंदिर में प्रवेश से रोके जाने के विरोध में राहुल गांधी और कार्यकर्ता सड़क पर बैठकर भजन गाने लगे, जिसने लोकतांत्रिक अधिकारों और स्वतंत्रता का मजबूत संदेश दिया।

गुवाहाटी में भी तनाव देखने को मिला, जहां यात्रा को शहर में प्रवेश से रोका गया और कांग्रेस कार्यकर्ताओं पर पुलिस कार्रवाई हुई। राहुल गांधी ने इन घटनाओं को "लोकतंत्र पर हमला" बताया और कहा कि विरोध की आवाज को दबाने की कोशिशें सफल नहीं होंगी। पूरी यात्रा के दौरान राहुल गांधी ने न्याय यात्रा के पांच स्तंभ—युवा न्याय, किसान न्याय, नारी न्याय, श्रमिक न्याय और भागीदारी न्याय पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि इन क्षेत्रों में न्याय के बिना वास्तविक विकास संभव नहीं है। छात्रों, महिलाओं और युवाओं से बातचीत में बेरोजगारी, महंगाई और अवसरों की कमी जैसे मुद्दे प्रमुख रहे। असम में यात्रा के समापन के साथ ही यह एक मजबूत राजनीतिक संदेश छोड़ गई। इसने सरकार के दावों और जमीनी सच्चाई के बीच के अंतर को उजागर किया, वंचित वर्गों की आवाज को बुलंद किया और कांग्रेस को न्याय, पारदर्शिता और समावेशी विकास के लिए प्रतिबद्ध पार्टी के रूप में स्थापित किया।

भारत जोड़ो न्याय यात्रा का असम चरण इस तरह एक अहम मोड़ साबित हुआ, जिसने एक राजनीतिक अभियान को जवाबदेही, सम्मान और समान भविष्य के जनआंदोलन में बदल दिया। अब समय है कि असम बदलाव की ओर कदम बढ़ाए।

विकास या सौदेबाजी?

क्यों असम में भ्रष्टाचार पर उठ रहे हैं सवाल

Photo: GettyImages

असम में भाजपा सरकार ने विकास के बड़े वादे किए, लेकिन वास्तविकता में विकास कुछ चुनिंदा लोगों और मुख्यमंत्री की संपत्ति तक सीमित नजर आता है। हिमंत सरकार पर भ्रष्टाचार का एक मॉडल खड़ा करने के आरोप लग रहे हैं। 9 अप्रैल 2026 को मतदान की तैयारी कर रहे लोग अब "नए असम" के लिए वोट देने के मूड में हैं, क्योंकि भाजपा के दावे और वादे कमजोर पड़ते दिख रहे हैं। जनता अब विश्वसनीय सरकार चाहती है।

लोगों के मन में यह बड़ा सवाल है कि क्या असम में विकास वास्तव में जनहित में हुआ है, या फिर यह भ्रष्टाचार, पक्षपात और ठेकेदार-आधारित व्यवस्था से प्रभावित रहा है। यह चुनाव अब पारदर्शिता, जवाबदेही और स्वच्छ शासन पर जनमत संग्रह बनता जा रहा है।

> **भ्रष्टाचार का मुद्दा अकेला नहीं है, बल्कि यह इस सवाल से जुड़ा है कि विकास का लाभ किसे मिल रहा है। आलोचकों का कहना है कि सरकारी खर्च हमेशा जनहित में नहीं बदला है।**

ऊपरी असम के चाय बागानों से लेकर बराक घाटी के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों तक यह धारणा मजबूत हो रही है कि विकास असमान रहा है और इसमें स्वार्थी हितों का प्रभाव रहा है। ठेकेदार-आधारित मॉडल के आरोप चुनाव अभियान में प्रमुख मुद्दा बन गए हैं। विपक्ष और स्थानीय लोग सवाल उठा रहे हैं कि क्या बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट्स का लाभ सिर्फ कुछ खास ठेकेदारों और राजनीतिक रूप से जुड़े लोगों को ही मिला है।

सड़क, पुल और शहरी परियोजनाओं को विकास के प्रतीक के रूप में पेश किया जा रहा है, लेकिन जनता पूछ रही है कि क्या ये परियोजनाएं ईमानदारी से पूरी हुई हैं या फिर लागत बढ़ाकर और अपारदर्शी प्रक्रियाओं के जरिए इन्हें लागू किया गया है।

भ्रष्टाचार का मुद्दा अकेला नहीं है, बल्कि यह इस सवाल से जुड़ा है कि विकास का लाभ किसे मिल रहा है। आलोचकों का कहना है कि सरकारी खर्च हमेशा जनहित में नहीं बदला है। कई परियोजनाएं कागजों या घोषणाओं तक सीमित हैं, और उनकी गुणवत्ता व दीर्घकालिक प्रभाव पर सवाल खड़े हो रहे हैं। इससे यह धारणा बनी है कि विकास अब समुदायों से ज्यादा ठेकों तक सीमित हो गया है।

जमीन आवंटन और बेदखली अभियान को लेकर विवाद ने इन चिंताओं को और बढ़ाया है। सरकार इसे विकास और अतिक्रमण हटाने का कदम बताती है, लेकिन विपक्ष का आरोप है कि इसमें पारदर्शिता की कमी है और इसका सबसे ज्यादा असर कमजोर वर्गों पर पड़ता है, जबकि जमीन का फायदा बड़े कॉरपोरेट हितों को मिलता है। इससे जमीन अधिकार, विस्थापन और पक्षपात जैसे मुद्दे चुनाव के केंद्र में आ गए हैं।

ग्रामीण संकट और बाढ़ विफलताओं के बीच जवाबदेह सरकार की मांग

Photo: GettyImages

ग्रामीण असम की वास्तविकता मौजूदा विकास मॉडल की सीमाओं को उजागर करती है। अंदरूनी इलाकों में अब भी खराब कनेक्टिविटी, कमजोर सार्वजनिक सेवाएं और स्वास्थ्य व शिक्षा तक सीमित पहुंच जैसी समस्याएं बनी हुई हैं। हर साल ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों की बाढ़ से भारी तबाही होती है, लेकिन स्थायी समाधान अब भी नहीं मिल पाया है। लगातार बजट आवंटन के बावजूद मजबूत ढांचे और योजना की कमी, व्यवस्था में खामियों और संभावित भ्रष्टाचार की ओर इशारा करती है।

असम की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि क्षेत्र भी संकट में है। किसानों को सिंचाई की कमी, भंडारण सुविधाओं की कमी और कमजोर बाजार संपर्क जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। बार-बार घोषणाओं के बावजूद कृषि ढांचे की कमजोरी यह सवाल उठाती है कि ग्रामीण विकास के लिए आवंटित धन का सही उपयोग नहीं हुआ।

कई किसानों के लिए यह सिर्फ उपेक्षा का मामला नहीं, बल्कि यह एहसास है कि शासन ने उनकी जरूरतों को प्राथमिकता नहीं दी। यही कारण है कि अब ये मुद्दे मतदाताओं की सोच को प्रभावित कर रहे हैं।

जमीन, बाढ़ राहत, ग्रामीण संकट और सार्वजनिक कार्यों में कथित भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे चुनाव अभियान के केंद्र में आ गए हैं। भाजपा सरकार की आखिरी समय की घोषणाएं अब लोगों को संतुष्ट नहीं कर पा रहीं।

इसके विपरीत, कांग्रेस के नेतृत्व वाला गठबंधन स्वच्छ शासन और जवाबदेह विकास के वादे के साथ मैदान में है। Gaurav Gogoi के नेतृत्व में यह गठबंधन खुद को एक मजबूत विकल्प के रूप में पेश कर रहा है, जो सत्ता और ठेकेदारों के गठजोड़ को तोड़ने की बात करता है।

यह अभियान लगातार पारदर्शिता, जनहित में खर्च और स्थानीय समुदायों को लाभ पहुंचाने वाले विकास मॉडल पर जोर दे रहा है।

समग्र विकास के लिए कांग्रेस का ब्लूप्रिंट

Photo: GettyImages

कांग्रेस का विकास ब्लूप्रिंट विकेंद्रीकृत और संतुलित विकास पर आधारित है, जो गुवाहाटी-केंद्रित मॉडल से आगे बढ़ता है। इसमें ऊपरी असम, बराक घाटी और पहाड़ी जिलों में निवेश पर जोर दिया गया है, साथ ही ग्रामीण बुनियादी ढांचे को मजबूत करने, सिंचाई सुधारने और प्रभावी बाढ़ प्रबंधन प्रणाली बनाने की बात कही गई है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि विकास को रोजगार और स्थानीय आर्थिक वृद्धि से जोड़ने पर जोर दिया गया है, ताकि सरकारी निवेश का सीधा लाभ जनता तक पहुंचे।

संस्थागत जवाबदेही भी इस योजना का अहम हिस्सा है। सार्वजनिक परियोजनाओं की सख्त निगरानी, पारदर्शी टेंडर प्रक्रिया और मजबूत भ्रष्टाचार विरोधी तंत्र के जरिए कांग्रेस जनता का भरोसा फिर से जीतना चाहती है।

इसके साथ ही समावेशी शासन और सामाजिक सद्भाव पर भी जोर दिया गया है। कांग्रेस खुद को विभाजनकारी राजनीति के खिलाफ खड़ा करते हुए एक न्यायसंगत और संतुलित विकास मॉडल पेश कर रही है।

2026 का असम विधानसभा चुनाव इस लिहाज से निर्णायक बनता जा रहा है। यह सिर्फ राजनीतिक मुकाबला नहीं, बल्कि दो अलग-अलग मॉडलों के बीच चुनाव है—एक जिस पर अपारदर्शिता और पक्षपात के आरोप हैं, और दूसरा जो पारदर्शिता और जन-केंद्रित शासन का वादा करता है।

जैसे-जैसे चुनाव आगे बढ़ रहा है, यह साफ दिख रहा है कि मतदाता अब सिर्फ नारों से आगे बढ़कर जवाबदेही और निष्पक्षता चाहते हैं।

कांग्रेस के नेतृत्व वाला गठबंधन इसी जनभावना के आधार पर विश्वास जता रहा है कि असम अब बदलाव के लिए तैयार है—एक ऐसा बदलाव जहां शासन साफ-सुथरा हो, विकास समावेशी हो और संसाधन वास्तव में जनता के हित में उपयोग हों।

AICC Impact Feature

नूतन बोर असम- नए असम के लिए कांग्रेस की 5 प्रतिश्रुतियां

असम विधानसभा चुनावों से पहले एक निर्णायक राजनीतिक क्षण में, कांग्रेस पार्टी ने अपने राष्ट्रीय अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे के नेतृत्व में “5 प्रतिश्रुति” शीर्षक से एक व्यापक और जन-केंद्रित घोषणापत्र जारी किया, जिसमें “नूतन बोर असम” एक नया, समावेशी और प्रगतिशील असम के लिए स्पष्ट रोडमैप प्रस्तुत किया गया है। नौबोइचा में एक बड़ी जनसभा के दौरान जारी इस घोषणापत्र में राज्य में बढ़ती आर्थिक कठिनाइयों, सामाजिक असमानताओं और शासन से जुड़े सवालों को सीधे संबोधित करने की कांग्रेस की कोशिश झलकती है।

पांच प्रमुख गारंटियों पर आधारित यह घोषणापत्र समाज के विभिन्न वर्गों महिलाओं, वरिष्ठ नागरिकों, स्वदेशी समुदायों और आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों से जुड़ने का प्रयास करता है, उन्हें सम्मान, सुरक्षा और अवसर देने वाले ठोस लाभों का वादा करता है। लॉन्च के दौरान खड़गे ने इन गारंटियों के पीछे की मंशा को स्पष्ट करते हुए कहा, “ये वे गारंटी हैं जिन्हें हम पूरा करेंगे। इसलिए मैं मतदाताओं से अपील करता हूं कि कांग्रेस का समर्थन करें और हमें असम को कुप्रबंधन और भ्रष्टाचार से मुक्त करने में मदद करें।” उनका यह बयान एक ऐसे चुनाव अभियान की दिशा तय करता है, जिसमें जनकल्याण की नीतियों के साथ मौजूदा सरकार पर तीखा राजनीतिक हमला भी शामिल है।

महिला सशक्तिकरण के लिए मासिक सहायता और 50,000

कांग्रेस के घोषणापत्र के केंद्र में महिलाओं के सशक्तिकरण की एक परिवर्तनकारी सोच है। यह मानते हुए कि महिलाएं परिवार की रीढ़ होती हैं, लेकिन अक्सर आर्थिक रूप से निर्भर रहती हैं, पार्टी ने एक दोहरे लाभ वाली योजना प्रस्तावित की है, जिसका उद्देश्य तात्कालिक वित्तीय सहायता और दीर्घकालिक आर्थिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना है।

इस वादे के तहत असम की हर महिला को बिना किसी शर्त के सीधे उसके बैंक खाते में मासिक नकद सहायता दी जाएगी। इसके अलावा, महिलाओं को नया व्यवसाय शुरू करने या मौजूदा काम को बढ़ाने के लिए 50,000 की एकमुश्त आर्थिक सहायता भी दी जाएगी। यह पहल केवल कल्याणकारी सहायता नहीं बल्कि खासकर ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में जमीनी स्तर पर उद्यमिता को बढ़ावा देने का माध्यम है, जहां पूंजी तक पहुंच सीमित रहती है।

इस योजना के पीछे के तर्क को स्पष्ट करते हुए खड़गे ने कांग्रेस के दृष्टिकोण और मौजूदा योजनाओं के बीच अंतर बताया। उन्होंने कहा, “हम इस नकद हस्तांतरण को बिना शर्त कह रहे हैं क्योंकि जो पैसा अभी भाजपा महिलाओं को दे रही है वह शर्तों के साथ है। लाभार्थी बनने के लिए भाजपा का सदस्य होना पड़ता है, लेकिन हम ऐसी कोई शर्त नहीं लगाएंगे और सभी को नकद लाभ दिया जाएगा।” यह कांग्रेस की समावेशी सोच को रेखांकित करता है और इस योजना को चयनात्मक लाभ के बजाय सार्वभौमिक अधिकार के रूप में पेश करता है।

अगर प्रभावी ढंग से लागू किया गया, तो यह कदम असम के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को बदल सकता है। महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता बढ़ने से घरेलू निर्णय लेने की क्षमता मजबूत होगी, बच्चों के पोषण और शिक्षा में सुधार आएगा और स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा। महिलाओं को अपनी आर्थिक सोच के केंद्र में रखकर कांग्रेस विकास को एक लैंगिक समावेशी नजरिए से परिभाषित करने की कोशिश कर रही है।

100 दिनों में ज़ुबीन गर्ग को न्यायः जवाबदेही का संकल्प

एक भावनात्मक और राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण वादे के तहत कांग्रेस ने सत्ता में आने के 100 दिनों के भीतर जुबीन गर्ग मामले में न्याय दिलाने का वादा किया है। यह मुद्दा असम के लोगों के बीच गहराई से जुड़ा हुआ है और पारदर्शिता, कानून-व्यवस्था की प्रभावशीलता और न्याय की गति को लेकर व्यापक चिंताओं का प्रतीक बन गया है।

इस मुद्दे पर खड़गे का बयान स्पष्ट थाः “हम सत्ता में आने के 100 दिनों के भीतर स्वर्गीय जुबीन गर्ग को न्याय दिलाने का वादा भी करते हैं। हम इस अवधि में यह पता लगाएंगे कि उनकी हत्या किसने की और इसके पीछे क्या साजिश थी।” एक तय समयसीमा के साथ यह वादा कांग्रेस की जवाबदेही सुनिश्चित करने की मंशा को दर्शाता है।

यह मामला फिलहाल फास्ट-ट्रैक कोर्ट में विचाराधीन है और इसे लेकर जनता की व्यापक रुचि बनी हुई है। कांग्रेस का यह वादा जनता की भावनाओं के अनुरूप एक समयबद्ध और जवाबदेह शासन मॉडल पेश करता है। इस विशेष मामले से आगे बढ़कर यह प्रतिबद्धता एक बड़े राजनीतिक संदेश को भी दर्शाती है कि कांग्रेस सरकार संस्थागत तंत्र को मजबूत करने और न्याय प्रणाली में जनता का भरोसा बहाल करने पर ध्यान देगी।

ऐसे आश्वासन उन मतदाताओं को आकर्षित कर सकते हैं जो शासन में देरी और अक्षमताओं से निराश हैं। न्याय को घोषणापत्र के केंद्र में रखकर कांग्रेस कानून के राज और पारदर्शी प्रशासन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को रेखांकित कर रही है।

वरिष्ठ नागरिकों के लिए 1,250 मासिक पेंशन

कांग्रेस घोषणापत्र का एक और महत्वपूर्ण स्तंभ वरिष्ठ नागरिकों पर केंद्रित है, जो अक्सर आर्थिक असुरक्षा और सीमित कल्याणकारी सुविधाओं का सामना करते हैं। इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए पार्टी ने असम के सभी वरिष्ठ नागरिकों के लिए 1,250 की मासिक पेंशन की गारंटी देने की घोषणा की है।

इस योजना का उद्देश्य बुजुर्गों को एक स्थिर और भरोसेमंद आय स्रोत प्रदान करना है, जिससे वे अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकें और पूरी तरह परिवार पर निर्भर न रहें। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह सहायता सम्मान और स्थिरता सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभा सकती है।

पेंशन योजना के अलावा कांग्रेस ने वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक अलग मंत्रालय बनाने का भी प्रस्ताव रखा है। इससे कल्याणकारी योजनाओं के बेहतर समन्वय, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच में सुधार और नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन की उम्मीद है। इस वादे का महत्व केवल आर्थिक सहायता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शासन में वरिष्ठ नागरिकों को प्राथमिकता देने का संकेत भी देता है। बढ़ती स्वास्थ्य लागत और जीवन प्रत्याशा के दौर में यह पहल तत्काल राहत और दीर्घकालिक नीति समाधान दोनों प्रदान करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

10 लाख स्वदेशी लोगों को भूमि अधिकारः सुरक्षा, स्थिरता और सम्मान

असम में भूमि स्वामित्व लंबे समय से एक संवेदनशील और विवादित मुद्दा रहा है, खासकर स्वदेशी समुदायों के लिए जो अस्थायी या अस्पष्ट अधिकारों के कारण अनिश्चितता में रहते हैं। इसे संबोधित करते हुए कांग्रेस ने 10 लाख स्वदेशी लोगों के ‘एकसोनिया पट्टों’ को स्थायी ‘मियादी पट्टों’ में बदलने का वादा किया है।

इस सुधार का उद्देश्य दीर्घकालिक सुरक्षा प्रदान करना और हर साल नवीनीकरण की आवश्यकता को खत्म करना है, जो अक्सर नौकरशाही अड़चनों और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। स्थायी भूमि अधिकार देकर पार्टी स्वदेशी समुदायों को कानूनी स्वामित्व और सामाजिक-आर्थिक स्थिरता देने का प्रयास कर रही है। इस पहल के प्रभाव को समझाते हुए खड़गे ने कहा, “इससे लोगों को हर साल अपने रिकॉर्ड का नवीनीकरण नहीं कराना पड़ेगा और न ही अधिकारियों से बार-बार अनुरोध करना पड़ेगा।” यह बयान प्रशासनिक अक्षमताओं को कम करने और नागरिकों को सम्मान देने की व्यापक प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

यह वादा आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। सुरक्षित भूमि स्वामित्व से लोग कृषि में निवेश कर सकते हैं, ऋण प्राप्त कर सकते हैं और अपनी आजीविका में सुधार कर सकते हैं। स्वदेशी समुदायों के लिए यह केवल आर्थिक सुरक्षा ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान का भी प्रतीक है।

स्वास्थ्य गारंटीः हर परिवार को 25 लाख का कैशलेस कवर

कोविड-19 महामारी के बाद असम में स्वास्थ्य सेवाएं एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरी हैं, जिसने बुनियादी ढांचे और पहुंच में बड़ी खामियों को उजागर किया। इसे ध्यान में रखते हुए कांग्रेस ने हर परिवार को 25 लाख तक का कैशलेस स्वास्थ्य बीमा कवर देने का वादा किया है।

यह महत्वाकांक्षी योजना यह सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई है कि किसी भी परिवार को इलाज के कारण आर्थिक संकट का सामना न करना पड़े। सरकारी और निजी दोनों अस्पतालों में इलाज की सुविधा के साथ यह योजना स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच बढ़ाने और जेब से होने वाले खर्च को कम करने का लक्ष्य रखती है।

इस वादे की व्यवहारिकता को रेखांकित करते हुए खड़गे ने राजस्थान, कर्नाटक और तेलंगाना जैसे कांग्रेस शासित राज्यों की समान योजनाओं का उदाहरण दिया। इससे यह संदेश देने की कोशिश की गई है कि कांग्रेस की गारंटियां केवल चुनावी वादे नहीं बल्कि साबित प्रशासनिक मॉडल पर आधारित हैं। असम के लिए यह योजना परिवर्तनकारी साबित हो सकती है, खासकर उन ग्रामीण इलाकों में जहां स्वास्थ्य सुविधाएं सीमित हैं। यह शहरी-ग्रामीण अंतर को कम करने, समय पर इलाज सुनिश्चित करने और समग्र स्वास्थ्य परिणामों में सुधार लाने में मदद कर सकती है। साथ ही, परिवारों पर आर्थिक बोझ कम होने से उनकी आर्थिक स्थिरता भी बढ़ेगी।

5 गारंटियों से आगेः असम के लिए समावेशी विकास की रूपरेखा

इन पांच गारंटियों से आगे बढ़ते हुए, कांग्रेस का घोषणापत्र समावेशिता, पारदर्शिता और आर्थिक सशक्तिकरण पर आधारित शासन की व्यापक दृष्टि प्रस्तुत करता है। गौरव गोगोई जैसे नेताओं ने विभाजनकारी राजनीति से दूर हटकर एकता और विकास पर ध्यान केंद्रित करने की जरूरत पर जोर दिया है। घोषणापत्र में प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, स्वास्थ्य सुरक्षा और भूमि अधिकारों पर दिया गया जोर जमीनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने और जीवन स्तर में सुधार लाने की रणनीति को दर्शाता है। लोगों के हाथ में सीधे पैसा पहुंचाकर कांग्रेस मांग बढ़ाने, स्थानीय बाजारों को प्रोत्साहित करने और आर्थिक विकास का चक्र बनाने की कोशिश कर रही है।

साथ ही, न्याय और संस्थागत सुधारों पर ध्यान शासन में जनता का भरोसा बहाल करने का प्रयास है। कल्याणकारी उपायों और संरचनात्मक बदलावों का यह संयोजन “नूतन बोर असम” की अवधारणा की आधारशिला है।

असम के लिए कांग्रेस का यह घोषणापत्र, जो “5 प्रतिश्रुति” में समाहित है, राज्य की विविध आबादी की आकांक्षाओं और चिंताओं को संबोधित करने का एक व्यापक प्रयास है। आर्थिक सहायता, सामाजिक न्याय और शासन सुधारों के मेल के साथ पार्टी असम के भविष्य के लिए एक स्पष्ट वैकल्पिक दृष्टि पेश कर रही है।

जैसा कि खड़गे ने लॉन्च के दौरान दोहराया, लक्ष्य हर नागरिक के लिए सम्मान, अवसर और प्रगति सुनिश्चित करना है। आने वाले चुनाव यह तय करेंगे कि यह दृष्टि मतदाताओं को कितना आकर्षित करती है, लेकिन फिलहाल “नूतन बोर असम” का नैरेटिव राज्य की राजनीति के केंद्र में मजबूती से स्थापित हो चुका है।

असम के लिए कांग्रेस का यह घोषणापत्र, जो “5 प्रतिश्रुति” में समाहित है, राज्य की विविध आबादी की आकांक्षाओं और चिंताओं को संबोधित करने का एक व्यापक प्रयास है। आर्थिक सहायता, सामाजिक न्याय और शासन सुधारों के मेल के साथ पार्टी असम के भविष्य के लिए एक स्पष्ट वैकल्पिक दृष्टि पेश कर रही है।

AICC Impact Feature

अशांति से बदलाव तक
असम में कांग्रेस के शासन का रिकॉर्ड

Photo: GettyImages

Photo: GettyImages

साल 2001 में जब कांग्रेस पार्टी ने असम में सत्ता संभाली, तब राज्य गहरी अस्थिरता, प्रशासनिक विफलता और व्यापक भय के माहौल से जूझ रहा था। कांग्रेस के सत्ता में आने से पहले का दौर अनिश्चितता और अशांति से भरा हुआ था। 1998 से 2001 के बीच का "सीक्रेट किलिंग" का दौर असम के राजनीतिक इतिहास का सबसे काला अध्याय माना जाता है। इस दौरान उल्फा उग्रवादियों के कथित समर्थकों, रिश्तेदारों और परिचितों को अज्ञात हमलावरों द्वारा निशाना बनाया गया, जिसने समाज में भय और असुरक्षा की गहरी छाप छोड़ दी।

कांग्रेस सरकार ने, तत्कालीन मुख्यमंत्री स्वर्गीय तरुण गोगोई के नेतृत्व में, सबसे पहले शांति और सामान्य स्थिति बहाल करने को प्राथमिकता दी। जनता का भरोसा वापस जीतना इसकी सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक रहा। संवाद और विकास के संतुलित दृष्टिकोण को अपनाते हुए सरकार ने न केवल उग्रवाद को नियंत्रित किया, बल्कि उल्फा सहित कई उग्रवादी संगठनों को बातचीत की मेज पर लाने में सफलता हासिल की। उस समय जब बम धमाके, जातीय संघर्ष और अलग राज्य की मांग आम बात थी, तब शांति और विकास की ओर बढ़ा यह कदम एक निर्णायक बदलाव साबित हुआ।

कांग्रेस सरकार को एक कमजोर आर्थिक स्थिति भी विरासत में मिली थी। पिछले शासनकाल में राज्य वित्तीय संकट से जूझ रहा था, सरकारी कर्मचारियों को महीनों तक वेतन नहीं मिल पा रहा था और ओवरड्राफ्ट की स्थिति बनी हुई थी। कांग्रेस सरकार ने अपने पहले कार्यकाल में ही आर्थिक स्थिति को स्थिर किया और राज्य को विकास की दिशा में आगे बढ़ाया। लंबे समय तक ठप पड़े विकास कार्यों को फिर से गति मिली और प्रशासनिक ढांचे को मजबूत किया गया।

इस दौरान एक महत्वपूर्ण संस्थागत उपलब्धि राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (NRC) को अपडेट करने की प्रक्रिया की शुरुआत थी। कांग्रेस ने इसे अवैध प्रवासन के मुद्दे को सुलझाने के साथ-साथ असली नागरिकों को अनावश्यक परेशानियों से बचाने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम माना। यह पहल राष्ट्रीय हितों और मानवाधिकारों के बीच संतुलन बनाने की कांग्रेस की प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

बोडोलैंड क्षेत्र में शांति स्थापित करने में भी कांग्रेस सरकार की अहम भूमिका रही। केंद्र सरकार के साथ सहयोग करते हुए, कांग्रेस ने बोडो लिबरेशन टाइगर्स के साथ शांति प्रक्रिया को आगे बढ़ाया, जिसका परिणाम 2003 के बोडो शांति समझौते के रूप में सामने आया। इस समझौते के तहत संविधान की छठी अनुसूची के अंतर्गत बोडोलैंड टेरिटोरियल काउंसिल का गठन हुआ, जिससे क्षेत्र में स्थिरता और स्वायत्तता को बढ़ावा मिला।

आर्थिक दृष्टि से कांग्रेस शासनकाल में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिला। असम की प्रति व्यक्ति आय 2001 में 13,059 से बढ़कर 2015 में 49,480 हो गई। इसी अवधि में राज्य का सकल घरेलू उत्पाद (GSDP) 38,313 करोड़ से बढ़कर 1,62,652 करोड़ तक पहुंच गया। राज्य की विकास दर में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ और यह 2001-02 के 1.75 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 तक 6.78 प्रतिशत हो गई।

राजस्व संग्रह में भी बड़ी वृद्धि दर्ज की गई। कर संग्रह 1,270 करोड़ से बढ़कर 8,177 करोड़ से अधिक हो गया, जबकि उत्पाद शुल्क 147 करोड़ से बढ़कर 665 करोड़ तक पहुंच गया। बैंकिंग क्षेत्र में भी विस्तार हुआ और लोगों की जमा राशि 10,992 करोड़ से बढ़कर 76,795 करोड़ हो गई, जो बढ़ते विश्वास और वित्तीय समावेशन को दर्शाता है।

कृषि क्षेत्र, जो असम की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। कृषि उत्पादन 2001 में 38.54 लाख टन से बढ़कर 2014 में 54.50 लाख टन हो गया। किसानों को मिलने वाले संस्थागत ऋण में भी वृद्धि हुई और 2014-15 तक यह 6,000 करोड़ तक पहुंच गया।

बुनियादी ढांचे के विकास में कांग्रेस सरकार ने ऐतिहासिक काम किया। पक्की सड़कों की लंबाई 2001 में केवल 545 किलोमीटर थी, जो 2013-14 तक बढ़कर 25,000 किलोमीटर से अधिक हो गई। राष्ट्रीय राजमार्गों का विस्तार हुआ और कई पुलों का निर्माण किया गया, जिससे राज्य के विभिन्न हिस्सों के बीच संपर्क बेहतर हुआ और व्यापार को बढ़ावा मिला।

बिजली क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण सुधार हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण का विस्तार किया गया और ट्रांसमिशन क्षमता 550 मेगावाट से बढ़ाकर 1,600 मेगावाट की गई। इससे उद्योग और घरेलू उपयोग दोनों को लाभ मिला।

शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण पहल की गईं। कक्षा 1 से 8 तक के छात्रों को मुफ़्त पाठ्यपुस्तकें दी गईं, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के छात्रों को मुफ़्त यूनिफॉर्म प्रदान की गई और बड़े पैमाने पर शिक्षकों की भर्ती की गई। 45,000 से अधिक शिक्षकों को प्रांतीयकृत किया गया और TET के माध्यम से 52,000 से अधिक प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति हुई। मेधावी छात्रों को मुफ़्त लैपटॉप दिए गए और छह राज्य विश्वविद्यालयों के साथ-साथ कई मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित किए गए। स्वास्थ्य क्षेत्र में भी बड़ा विस्तार हुआ। जोरहाट, बरपेटा और तेजपुर में नए मेडिकल कॉलेज स्थापित किए गए। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के लिए ममता, माजनी और मरम संजीवनी जैसी योजनाएं शुरू की गईं। मुफ़्त एंबुलेंस सेवा ने आपातकालीन स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाया।

कांग्रेस सरकार ने समावेशी शासन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न समुदायों के लिए 29 विकास परिषदों का गठन किया। इन परिषदों का उद्देश्य अलग-अलग समुदायों की सामाजिक और आर्थिक जरूरतों को पूरा करना और उन्हें विकास प्रक्रिया में भागीदार बनाना था।

महिला सशक्तिकरण भी प्रमुख प्राथमिकता रहा। स्वयं सहायता समूहों का गठन और छात्राओं को साइकिल वितरण जैसी योजनाओं ने शिक्षा और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया। स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण ने लोकतंत्र को मजबूत किया और महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई।खेल के क्षेत्र में भी असम ने नई पहचान बनाई। 33वें राष्ट्रीय खेलों और 2016 दक्षिण एशियाई खेलों का सफल आयोजन किया गया। इंदिरा गांधी एथलेटिक स्टेडियम सहित कई विश्वस्तरीय खेल सुविधाएं विकसित की गईं, जिससे असम पूर्वोत्तर में खेलों का केंद्र बनकर उभरा। कुल मिलाकर, शांति बहाली से लेकर आर्थिक विकास और सामाजिक ढांचे को मजबूत करने तक, कांग्रेस सरकार के 15 वर्षों के शासन ने असम के विकास की मजबूत नींव रखी।

आर्थिक दृष्टि से कांग्रेस शासनकाल में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिला। असम की प्रति व्यक्ति आय 2001 में 13,059 से बढ़कर 2015 में 49,480 हो गई। इसी अवधि में राज्य का सकल घरेलू उत्पाद (GSDP) 38,313 करोड़ से बढ़कर 1,62,652 करोड़ तक पहुंच गया। राज्य की विकास दर में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ और यह 2001-02 के 1.75 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 तक 6.78 प्रतिशत हो गई।

असम के भविष्य का रोडमैप
शांति, भागीदारी और साझा समृद्धि का संकल्प

अपने शासनकाल की विरासत को आगे बढ़ाते हुए कांग्रेस पार्टी असम के लिए एक दूरदर्शी और समावेशी विकास का खाका पेश कर रही है। यह दृष्टिकोण लोकतांत्रिक भागीदारी, सामाजिक संतुलन और सतत विकास पर आधारित है। ऐसे समय में जब सामाजिक सौहार्द, रोजगार के अवसर और संस्थागत पारदर्शिता को लेकर सवाल उठ रहे हैं, कांग्रेस खुद को एक ऐसे विकल्प के रूप में प्रस्तुत कर रही है जो संतुलित और न्यायपूर्ण विकास सुनिश्चित कर सके।

कांग्रेस की सोच का केंद्र यह है कि विकास का लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुंचे। पार्टी ने हमेशा ऐसी नीतियों का समर्थन किया है जो वंचित और कमजोर वर्गों को सशक्त बनाएं, स्थानीय पहचान की रक्षा करें और सामाजिक सौहार्द को मजबूत करें। विभिन्न समुदायों के लिए विकास परिषदों के अपने अनुभव के आधार पर कांग्रेस अब भागीदारी आधारित शासन को और मजबूत करने की दिशा में काम करने की बात कर रही है।

आर्थिक पुनरुद्धार और रोजगार सृजन कांग्रेस की प्राथमिकताओं में शामिल हैं। पार्टी कृषि, लघु उद्योग और सेवा क्षेत्र पर विशेष ध्यान देकर युवाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाने की योजना बना रही है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत कर और उद्यमिता को बढ़ावा देकर पलायन को रोकने और स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन का लक्ष्य रखा गया है।

कृषि क्षेत्र में कांग्रेस बेहतर ऋण सुविधा, सिंचाई व्यवस्था और बाजार से जुड़ाव सुनिश्चित करने की दिशा में काम करने की बात कर रही है। आधुनिक तकनीकों को अपनाते हुए पारंपरिक कृषि को मजबूत करना इसका उद्देश्य है, ताकि किसानों की आय और उत्पादकता दोनों बढ़ सकें।

Photo: GettyImages

बुनियादी ढांचे का विकास कांग्रेस के एजेंडे का महत्वपूर्ण हिस्सा रहेगा। सड़कों और कनेक्टिविटी के अपने पिछले अनुभव को आगे बढ़ाते हुए पार्टी परिवहन नेटवर्क का विस्तार, ग्रामीण सड़कों का सुधार और डिजिटल कनेक्टिविटी को बढ़ाने पर जोर दे रही है। इससे न केवल आर्थिक गतिविधियों को गति मिलेगी बल्कि लोगों को जरूरी सेवाओं तक बेहतर पहुंच भी मिलेगी।

शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी कांग्रेस नई ऊर्जा के साथ काम करने की बात कर रही है। शिक्षा प्रणाली को मजबूत करने, योग्य शिक्षकों की नियुक्ति और आधुनिक सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया जाएगा। स्वास्थ्य सेवाओं में मेडिकल सुविधाओं का विस्तार, इलाज को सस्ता बनाना और प्राथमिक स्वास्थ्य ढांचे को मजबूत करना प्राथमिकता में रहेगा।

महिलाओं और युवाओं का सशक्तिकरण कांग्रेस की विकास रणनीति का अहम हिस्सा है। स्वयं सहायता समूहों के विस्तार, महिला उद्यमियों को वित्तीय सहायता और कौशल विकास कार्यक्रमों के जरिए महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य है। युवाओं के लिए शिक्षा, कौशल और रोजगार के अवसर बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

असम की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता की रक्षा भी कांग्रेस की प्राथमिकता में है। असम समझौते के सिद्धांतों, विशेष रूप से 1971 की कट-ऑफ तिथि को बनाए रखने की प्रतिबद्धता पार्टी ने दोहराई है। कांग्रेस का मानना है कि स्थानीय लोगों की पहचान की रक्षा करते हुए सभी नागरिकों के साथ न्याय और समानता सुनिश्चित करना जरूरी है।

महिलाओं और युवाओं का सशक्तिकरण कांग्रेस की विकास रणनीति का अहम हिस्सा है। स्वयं सहायता समूहों के विस्तार, महिला उद्यमियों को वित्तीय सहायता और कौशल विकास कार्यक्रमों के जरिए महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य है। युवाओं के लिए शिक्षा, कौशल और रोजगार के अवसर बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

लोकतांत्रिक शासन और जवाबदेही कांग्रेस के विजन का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। पारदर्शी निर्णय प्रक्रिया, स्थानीय निकायों को सशक्त बनाना और जनता की भागीदारी बढ़ाना पार्टी के एजेंडे में शामिल है। विकेंद्रीकरण के माध्यम से जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने का प्रयास किया जाएगा।

पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास पर भी कांग्रेस का विशेष ध्यान है। बाढ़ और प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित असम में आपदा प्रबंधन, नदी प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण के उपायों को प्राथमिकता दी जाएगी। दीर्घकालिक विकास के लिए पर्यावरणीय संतुलन को नीति निर्माण में शामिल किया जाएगा।

सहकारी संघवाद की अवधारणा कांग्रेस की रणनीति का अहम हिस्सा है। केंद्र के साथ बेहतर तालमेल बनाकर राज्य के लिए अधिक संसाधन सुनिश्चित करना और विकास योजनाओं के लिए पर्याप्त फंडिंग हासिल करना पार्टी का लक्ष्य है।

कांग्रेस शांति और विकास के उस मॉडल को फिर से स्थापित करने की बात कर रही है, जिसने उसके पिछले शासनकाल को परिभाषित किया था। संवाद, समावेश और न्याय के जरिए सामाजिक सौहार्द को मजबूत करने और संघर्ष की संभावनाओं को खत्म करने पर जोर दिया जाएगा।

जैसे-जैसे असम एक नए राजनीतिक दौर की ओर बढ़ रहा है, कांग्रेस खुद को एक मजबूत और विश्वसनीय विकल्प के रूप में पेश कर रही है। अपने अनुभव और समावेशी दृष्टिकोण के साथ पार्टी राज्य के लोगों की आकांक्षाओं से जुड़ने की कोशिश कर रही है।

कांग्रेस का स्पष्ट संदेश है—असम का विकास शांति, भागीदारी और साझा समृद्धि के आधार पर ही संभव है।

AICC Impact Feature

संडे नवजीवन
रविवार, 05 अप्रैल, 2026 । www.navjivanindia.com
Published Date 05 April, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

जिन्ना, इकबाल, सर सैयद अहमद खान

पीजी के पाठ्यक्रम से अहम मुस्लिम किरदारों के नाम हटाने का जम्मू यूनिवर्सिटी का प्रस्ताव आश्चर्यजनक तो नहीं लेकिन बेहद खतरनाक

हारून रेशी

जम्मू यूनिवर्सिटी के पोस्टग्रैजुएट पॉलिटिकल साइंस के सिलेबस से मोहम्मद अली जिन्ना, डॉ. मोहम्मद इकबाल और सर सैयद अहमद खान के जिक्र को हटाने का हालिया प्रस्ताव उन लोगों को हैरान कर गया जो अकादमिक आजादी को अहमियत देते हैं और ऐतिहासिक नजरिये को मिटाने का विरोध करते हैं। आलोचकों ने चेतावनी दी है कि यह कदम अहम नजरिये को मिटाने और आधुनिक भारतीय इतिहास को फिर से लिखने की खतरनाक कोशिश है। इससे भी ज्यादा हैरान करने वाली बात यह है कि यह फैसला कितनी तेजी से लिया गया। महज चार दिनों के भीतर सिलेबस से इन नामों को हटाने की सिफारिश को मंजूरी दे दी गई!

यह विवाद 20 मार्च को शुरू हुआ, जब अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी) ने 'अल्पसंख्यक और राष्ट्र' पेपर में जिन्ना को शामिल किए जाने का विरोध किया। इसके तुरंत बाद कुलपति उमेश राय ने पाठ्यक्रम की समीक्षा के लिए समिति का गठन किया। प्रो. नरेश पाढ़ा के नेतृत्व वाली इस समिति ने एमए राजनीति विज्ञान के पाठ्यक्रम से जिन्ना, सैयद अहमद खान और मोहम्मद इकबाल से संबंधित सभी सामग्री को हटाने की सिफारिश की।

जम्मू यूनिवर्सिटी के राजनीति शास्त्र विभाग के प्रमुख द्वारा जारी प्रेस रिलीज में कहा गया है: 'संकाय/विभागीय मामलों की समिति (डीएसी) की बैठक 22 मार्च 2026 को हुई गहन विचार-विमर्श के बाद, समिति ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया कि पॉलिटिकल साइंस में एक वर्षीय स्नातकोत्तर कार्यक्रम के पीआईपीएसटीसी 102 पाठ्यक्रम और दो वर्षीय स्नातकोत्तर कार्यक्रम के पी2पीएसटीसी 302 पाठ्यक्रम से मोहम्मद अली जिन्ना, सैयद अहमद खान और मोहम्मद इकबाल से संबंधित विषयों को हटाने की सिफारिश की जाए।'

यह सिफारिश बोर्ड ऑफ स्टडीज को भेजी गई जिसकी 24 मार्च को ऑनलाइन मीटिंग होनी थी, ताकि इस पर चर्चा करके कोई फैसला लिया जा सके। हालांकि इसके फैसले को सार्वजनिक नहीं किया गया है, लेकिन माना जा रहा है कि प्रस्तावित बदलावों को मंजूरी दे दी गई है। यह सब महज चार दिनों में हो गया- बिना किसी सार्वजनिक बहस के, बिना शिक्षाविदों से सलाह-मशविरा किए, और बिना दूसरे शिक्षण संस्थानों से राय लिए।

सबसे चिंताजनक बात यह है कि इस कदम का लगभग किसी ने विरोध नहीं किया। न किसी जाने-माने संस्थान ने, न किसी अनुभवी शिक्षाविद ने, और न ही सिविल सोसाइटी के किसी नेता ने। गुज्जर बकरवाल स्टूडेंट्स अलायंस (जीबीएसए) के मुख्य प्रवक्ता आमिर चौधरी, जिन्होंने इस फैसले का जोरदार विरोध किया था, ने कहा कि अलायंस का अभियान सिविल सोसाइटी और यहां तक कि उदारवादी शिक्षा जगत के कुछ तबकों से भी समर्थन जुटाने में नाकाम रहा। चौधरी ने कहा, 'सच कहूं तो, मुझे हैरानी नहीं हुई। यूनिवर्सिटी के भगवाकरण की लगातार कोशिशें हो रही थीं, और अब ये कामयाब भी हो गई हैं।'

उन्होंने इस रुझान को एक और हालिया उदाहरण बताया। चौधरी के मुताबिक, एबीवीपी और भाजपा ने यूनिवर्सिटी पर दबाव डाला कि 13 मार्च को हुए दो-दिवसीय सांस्कृतिक कार्यक्रम के शीर्षक से 'जम्मूइयत' शब्द हटाया जाए। चौधरी ने कहा, 'कार्यक्रम का मूल नाम 'जम्मूइयतः साहित्य-संस्कृति समागम' था। लेकिन यह हटा दिया गया, क्योंकि यह उर्दू शब्द है। उनका दावा था कि इस शब्द को भी उसी तरह जोड़ा जा रहा है, जिस तरह कभी 'कश्मीरियत' शब्द को 'गढ़ा' गया था।'

वरिष्ठ शिक्षाविद प्रो. नूर अहमद बाबा, जो पहले कश्मीर यूनिवर्सिटी के पॉलिटिकल साइंस डिपार्टमेंट के हेड थे, ने इस फैसले को 'हास्यास्पद' करार दिया। 'संडे नवजीवन' से बात करते हुए उन्होंने कहा, 'ऐसे काम उस यूनिवर्सिटी को शोभा नहीं देते, जिसे उच्च शिक्षा और अलग-अलग विचारों का केन्द्र माना जाता है। इतिहास को नकारा नहीं जा सकता। जिन लोगों के जिक्र को सिलेबस से हटाया गया है, उन्होंने आधुनिक भारतीय इतिहास को गढ़ने में अहम भूमिका निभाई है, और कोई भी उनके असर को नजरअंदाज नहीं कर सकता। भारतीय नजरिये से, उन्हें हीरो या विलेन के तौर पर देखा जा सकता है, लेकिन उनके योगदान को मिटाया नहीं जा सकता। उनकी अहमियत को माने बिना उन्हें हटाना, आधुनिक भारतीय इतिहास के बारे में हमारी समझ को ही बिगाड़ता है... ऐसे कदम दूरदर्शिता की कमी दिखाते हैं।'

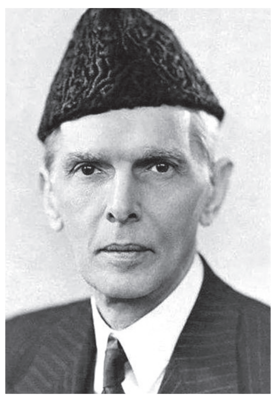

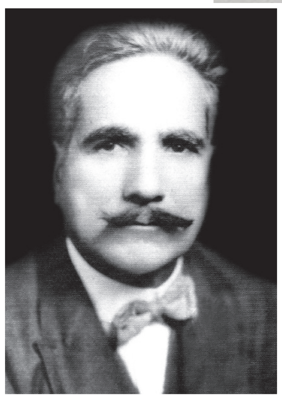

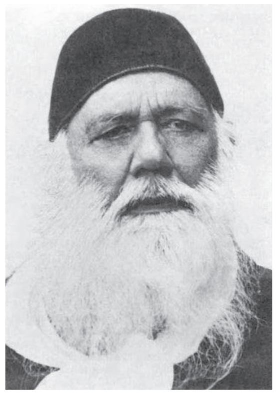

जम्मू यूनिवर्सिटी का इतिहास विभाग। (नीचे बाएं से) मोहम्मद अली जिन्ना, मोहम्मद इकबाल और सैयद अहमद खान

राजनीतिक विश्लेषक और उर्दू दैनिक 'तस्कीन' के संपादक सोहेल काजमी जम्मू की एक जानी-मानी सामाजिक हस्ती हैं। उन्हें इसमें एक खतरनाक पैटर्न नजर आता है- 'यह सिर्फ यूनिवर्सिटी की बात नहीं। पूरे जम्मू क्षेत्र को ऐसी अवांछित गतिविधियों का अड्डा बनाया जा रहा है। मेरी समझ से नागपुर के बाद जम्मू आरएसएस का अगला बड़ा गढ़ बन रहा है। वे लगातार उस सामाजिक ताने-बाने को बदलने की कोशिश कर रहे हैं, जिसकी जड़ें कभी धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक मूल्यों में थीं, और उसे कट्टरता और नफरत भरे माहौल में बदल रहे हैं।' समावेशी अतीत को याद करते हुए काजमी ने 'संडे नवजीवन' से कहा, '2011 में हमने जम्मू में 'जश्न-ए-फैज' कार्यक्रम आयोजित किया था और पाकिस्तान तथा भारत के जाने-माने विद्वानों और लेखकों को आमंत्रित किया था।' इस भव्य दो-दिवसीय कार्यक्रम का वित्तपोषण 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' (आईसीसीआर) द्वारा किया गया था, और तब आईसीसीआर के प्रमुख डॉ. करण सिंह ने इसमें अग्रणी भूमिका निभाई थी। यहां तक कि तत्कालीन पुलिस महानिदेशक कुलदीप खोड़ा ने भी अपने विभाग की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से इसमें सहयोग दिया था। आज के जम्मू में, इस तरह के किसी कार्यक्रम का आयोजन अकल्पनीय है। हम अपने धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ-साथ अपनी सामाजिक नैतिकता को भी खो चुके हैं।

काजमी का मानना है कि पाठ्यक्रम से मुस्लिम हस्तियों के संदर्भों को हटाए जाने की हर उस व्यक्ति द्वारा कड़े से कड़े शब्दों में निंदा की जानी चाहिए, जो शिक्षा की नैतिकता में विश्वास रखता है। वह कहते हैं, 'कम-से-कम, शिक्षा को तो धार्मिक और राजनीतिक पूर्वाग्रहों से मुक्त रखा ही जाना चाहिए। अगर जिन्ना भारत में कोई उग्रवादी नेता होते, तो मैं पाठ्यक्रम से उनके संदर्भ को हटाने का समर्थन करता। लेकिन वह सबसे तेज दिमाग वाले लोगों में से एक थे- बेहद शिक्षित और, सबसे बढ़कर, भारत के सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक नेताओं में से एक। हम इतिहास से, या किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से भी उनका नाम कैसे मिटा सकते हैं? इसी तरह, सर सैयद अहमद खान ने हमारे देश में शिक्षा सुधार में अहम भूमिका निभाई। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना की, जो एक ऐसा संस्थान है जिस पर भारत का हर नागरिक गर्व कर सकता है। हम उन्हें क्यों हटाएं? इकबाल, जिन्होंने हमें 'सारे जहां से अच्छा' दिया, उन्हें भला खतरा कैसे माना जा सकता है?'

बात केवल यूनिवर्सिटी की नहीं, नागपुर के बाद जम्मू आरएसएस के सबसे बड़े गढ़ के तौर पर विकसित हो रहा है। आज के जम्मू में जश्न-ए-फैज जैसे कार्यक्रम का आयोजन कल्पना के परे है

आमिर चौधरी ने एक और अहम सवाल उठाया: 'यूनिवर्सिटी के अधिकारी युवा छात्रों को भारतीय इतिहास की इतनी अहम हस्तियों के बारे में जानने के अधिकार से कैसे वंचित कर सकते हैं? हमारे ऐतिहासिक वृत्तांत से उनके जिक्र को मिटाकर, हमारे शिक्षण संस्थान किस तरह के विद्वान तैयार करने की उम्मीद कर सकते हैं? अगर हमारे संस्थान इस जिम्मेदारी को छोड़ देते हैं, तो हम ऐसी पीढ़ियां तैयार करने का जोखिम उठाते हैं जो अंतर्दृष्टि के बजाय अज्ञानता में पली-बढ़ी हों।' ■

Nehru centre
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम
वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर मुंबई के हृदयस्थल में, बीकेसी से सटे, एयरपोर्ट के पास
इन सबके लिए सर्वोत्तम:
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम
ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे
बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051